शिशु-रोगोंकी

गृह-चिकित्सा

कुलरंजन मुखर्जी

चिकित्सा के सम्बन्ध में उपदेश लेने के नियम

नीचे लिखे पते पर कोई भी व्यक्ति पत्र देकर या मुख से मिलकर चिकित्सा के सम्बन्ध में सलाह ले सकता है। पत्र भेजनेवालों को चाहिये कि रोग का पूरा व्योरेवार विवरण लिखें। रोगोंके नाम, कितने दिनों से रोग है, रोगी सबल या दुर्बल. रोगी का [illegible] पसीना और

पेशाब [illegible] उम्र कितनी है

[illegible] स स्थान पर

[illegible]। बाहर के

[illegible] ना चाहिये।

[illegible] स्थानों पर

[illegible] का इलाज

[illegible] ी नर्स द्वारा

LM
152H

२३६८

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

प्रकाशक—

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४/२ बी और सी, हाजरा रोड,

कालीघाट, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-३१८०

LM
1524.

पुस्तक मिलने के पते—

१। डा० नीलकान्त चक्रवर्ती
प्राकृतिक चिकित्सालय
११४।२ बी और सी, हाजरा रोड, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

२। डा० विट्ठलदास मोदी
आरोग्य मंदिर, आम बाजार, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

३। आनन्द प्राकृतिक चिकित्सालय
पो० नकटिया, बरेली (उत्तर प्रदेश)

४। जवाहरलाल नेहरू पुस्तक भवन
चरगावाँ, गोरखपुर, (उत्तर प्रदेश)

५। सर्वोदय साहित्य मंदिर
प्लाट फार्म नं १, रेलवे स्टेशन, नागपुर

मुद्रक—
श्री शिवचन्द्र मैत्र
पपुलर आर्ट प्रिण्टर्स
१, मुक्ताराम बाबू सेकेण्ड लेन,
कलकत्ता-७

2314

निवेदन

जनसाधारण अब क्रमशः अनुभव कर रहे हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा सभी प्रकार के रोग जड़ से आरोग्य हो सकते हैं। भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों के प्राकृतिक चिकित्सालयों में जो रोगियों की संख्या बढ़ रही है यही इसका प्रमाण है।

प्राकृतिक चिकित्सा एक तरह की गृह-चिकित्सा है। इसमें एक भी पैसा खर्च नहीं होता और सभी प्रकार के रोग मिट जाते हैं। साथ ही अपना तथा अपने परिवार का इलाज स्वयं किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस चिकित्सा में रोग को दबाया नहीं जाता। इसके द्वारा रोग के मूल कारण को शरीर से बाहर कर रोग आरोग्य किया जाता है। इसीलिए इस चिकित्सा से केवल रोग ही नहीं मिटता वरन् स्वास्थ्य में भी उन्नति होती है। अथवा स्वास्थ्य को सुधार कर रोग आरोग्य करने की जो व्यवस्था है उसे प्राकृतिक चिकित्सा कहते हैं।

किन्तु भारतवर्ष में सर्वत्र वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार चिकित्सा होती है ऐसा नहीं कहा जा सकता। बहुत-से आदमी अभी भी सौ वर्ष पूर्व की पुरानी पद्धति अपनाये बैठे हैं। इसमें संदेह नहीं कि चिकित्सा सर्वदा ही वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित होनी चाहिए। कुछ दिनों पूर्व प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न धाराओं के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों पर विस्तृत गवेषणा हुई है। उन्हीं सब गवेषणाओं के आधार पर और पृथ्वी के श्रेष्ठ चिकित्सकों की पद्धति के अनुसार यह पुस्तक लिखी गई है।

छोटे बच्चों के कोमल शरीर में हमेशा ही औषधि प्रयोग नहीं करनी चाहिए। यदि बिना औषधि के उनके रोग आरोग्य किए जाएँ तो इससे बढ़कर और कुछ नहीं है। इस पुस्तक में शिशु-रोगों की अचूक चिकित्सा-विधि तथा स्वास्थ्य की सर्वसम्मत नीति दी गई है। मैं आशा करता हूँ कि जनसाधारण अपने शिशुओं के रोग में व स्वास्थ्य में इन विधियों को काम में लगायेंगे। इस पुस्तक को मैंने इस प्रकार लिखने की चेष्टा की है कि सभी दूसरे किसी की चेष्टा के बिना अपने घर की चिकित्सा आप कर सकें।

मैंने केवल बड़े बड़े डाक्टरों का मत ही इस पुस्तक में उद्धृत नहीं किया है, प्रायः छः वर्षों तक 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' अस्पताल में हजारों रोगियों के ऊपर इन सभी विधियों का प्रयोग कर उनकी उपकारिता के सम्बन्ध में मैं निःसन्देह हो गया हूँ।

यदि मेरी सेवा देश ग्रहण करे तो मैं अपना जीवन सार्थक समझूंगा।

प्राकृतिक चिकित्सालय,
११४।२ बी और सी, हाजरा रोड,
कलकत्ता—२६
फोन : ४७-३१८०

कुलरंजन मुखर्जी

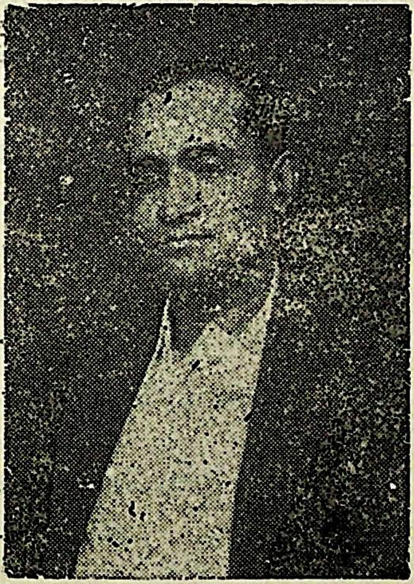

स्व० कुलरंजन मुखर्जी

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ संख्या
नवजात शिशु की चिकित्सा	...	...	१
नवजात शिशु के रोग	...	....	५
श्वासरोध (Still-birth)	...	...	५
मूत्ररोध	...	...	६
मलरोध	...	...	७
नाभि से रक्तस्राव	...	...	८
नाभि की सूजन	...	...	१०
नवजात शिशु का ज्वर	...	...	११
शैशवकाल की स्वास्थ्यनीति	...	...	१२
शिशु-रोग और उनकी चिकित्सा	...	...	२३
ज्वर	...	...	२६
गाल-फूलना (Mump)	...	...	३१
चेचक (Measles)	...	...	३३
श्वास यंत्र के रोग	....	...	३८
सर्दी	...	...	३८
सर्दी-ज्वर	....	...	४१
खाँसी	...	...	४२
कुक्कुर खाँसी (Whooping Cough)		....	४४
परिपाक यंत्र के रोग	....	...	५०
शिशु का खाद्य	...	....	५०
पेट दर्द	...	...	५७
वायु	...	...	६०
कोष्ठबद्धता	....	...	६०

विषय			पृष्ठ संख्या
अतिसार (डाइरिया)	...	...	६७
आँव	...	...	७७
उलटी	...	...	८०
मलद्वार का बहिर्गमन	...	...	८५
पुराना अजीर्ण	...	...	८८
अन्त्रवृद्धि या आँत उतरना (Hernia)		...	९१
कृमि	...	...	९५
यकृत के रोग	...	...	९८
यकृत का प्रदाह	...	...	९८
यकृत की वृद्धि	...	...	१००
कमला (Jaundice)	...		१०२
शिशु का यकृत-रोग (Infantile Liver)		...	१०४
पुष्टि-संबंधी रोग	...	...	१११
सूखा रोग (Rickets)	...	...	१११
स्नायविक रोग	...	...	११७
मरोड़ (Convulsions)	...	...	११७
बच्चों का लकवा (Infantile paralysis)		...	१२२
तुतलाना	...	...	१२८
चर्मरोग	...	...	१३४
अलाई (Prickly Heat)	...	...	१३४
दुलपित्ती (Urticaria)	...	...	१३५
दाद	...	...	१३७
एकजीमा	...	...	१४०
घाव	...	...	१४५

विषय			पृष्ठ संख्या
साधारण घाव	...	...	१४५
खाज (Itches)	...	...	१४७
फोड़ा (Boil)	...	...	१४८
कर्ण-रोग	...	...	१५०
कान की स्वास्थ्य नीति	...	...	१५०
कान-दर्द	...	...	१५४
कान पकना (Otorrhoea)	...	...	१५६
आँखों के रोग	...	...	१५७
आँखों की स्वास्थ्य नीति	...	...	१५७
आँख की बिलनी	...	...	१५९
आँख आना (Ophthalmia)	...	...	१५९
दन्त-रोग	...	...	१६१
दाँतों की स्वास्थ्य नीति	...	...	१६१
दाँत निकलने सम्बन्धी रोग	...	....	१६७
दाँत-दर्द	....	....	१६९
दाँत सड़ना (Caries of the Teeth)		...	१७०
गल रोग	...	...	१७२
गले का दर्द	....	...	१७२
गला बैठ जाना (Hoarseness)	...	...	१७२
टान्सिल का सूजन	...	...	१७३
प्राकृतिक चिकित्सा का जादू	...	...	१७५
प्रयोग विधि	...	...	१८६

शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा

एक

नवजात शिशु की चिकित्सा

दस महीने दस दिनों तक शिशु माता के अँधेरे पेट में आँखे बन्द करके पड़ा रहता है। उसके बाद अकस्मात् एक दिन प्रकाश से झलमल आनन्द कोलाहलपूर्ण, शीतल पवन से ठण्डी इस पृथ्वी पर उतर आता है वासन्ती हवा के किसी झोंके की भाँति।

इस नए वातावरण के अनुकूल अपने शरीर को बना लेना शिशु के लिए सरल नहीं होता। यही कारण है कि इतने अधिक नवकुसुम अकाल ही में झर जाते हैं। शिशु-मृत्यु इस कारण ही इतनी अधिक होती है।

किन्तु, पृथ्वी के अन्य देशों में जितने शिशु काल-कवलित होते हैं, उनसे भी बहुत अधिक होते हैं भारत में।

यह विचार कर ही मन में आश्चर्य होता है कि भारत में प्रति वर्ष जितने शिशु जन्म लेते हैं, उनके नौवें हिस्से से ज्यादा असमय में ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। स्वीडन में प्रति १ हजार शिशुओं में से केवल २१ की मृत्यु होती है। नारवे में २५ की, अमेरिका में २८ की, इङ्गलैंड में ३१ की, कनाडा में ३८ की, फ्रांस में ४६ की, जापान में ५७ की, किन्तु भारत में १ हजार में से ११५ नवजात शिशुओं का

जीवन-दीप असमय में ही बुझ जाता है। यह संसार के १९५३ साल का हिसाब है (United Nations—Statistical Year-book, pp. 43-45)।

इसका कारण क्या है ? प्रसव और शैशवकाल को स्वास्थ्यनीति सम्बन्धी हमारे देश की स्त्रियों की घोर अज्ञानता ही इसका प्रधान कारण है।

प्रकाशहीन, नमीपूर्ण तथा अस्वास्थ्यकर प्रसवस्थान, प्रसव के समय गन्दे कपड़ों और बिस्तर का उपयोग तथा नाल काटने में गलती आदि कारणों से जन्म के थोड़े समय बाद ही अनेक शिशुओं की मृत्यु हो जाती है।

इन सभी गलतियों को दूर करना कठिन नहीं है। भावी वंशधर का स्वागत करने के लिए प्रसव से पहले ही व्यवस्था कर ली जा सकती है। मकान में जो कमरा सबसे स्वच्छ हो, उसे ही इस प्रयोजन के लिए निश्चित कर रखना चाहिए। प्रसव के समय जिन वस्त्रों और कपड़े के टुकड़ों की आवश्यकता पड़ सकती है, उनका एकदम साफ होना जरूरी है। दाई और जो कोई भी प्रसव के समय सहायता करने आए, उसके हाथ भी यथासम्भव स्वच्छ रहें। जो जल इस समय काम में लाया जाए, वह भी यथेष्ट साफ रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए।

शिशु के जन्म लेते ही, समय खोए बिना, उसकी ओर ध्यान देना जरूरी है। सबसे पहले बहुत मुलायम गीला कपड़ा या साफ रुई लेकर उसकी दोनों आँखें साफ कर देनी चाहिये। ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक है। नहीं तो आगे चलकर आँख की विभिन्न बीमारियाँ

हो सकती हैं। अनेक अवस्थाओं में तो इसमें असावधानी ही जन्मांधता का प्रधान कारण होती है।

इसके बाद ही अँगुली से नाल (नाभिरज्जु) की परीक्षा करना जरूरी है। इस समय नाल को हाथ लगाने पर रक्त की धड़कन हाथ में स्पष्ट अनुभव होती है। शिशु के पृथ्वी पर आने के बाद माता के शरीर से जो रक्त शिशु के शरीर में प्रविष्ट होता है, वही इस धड़कन को उत्पन्न करता है। यह रक्त शिशु को दो दिनों तक जीवित रख सकता है। जैसे ही नाल के भीतर रक्त की धड़कन बन्द हो जाए, वैसे ही साफ और मोटे तागे से अथवा पतले फीते से नाल को बाँध देना चाहिए। शिशु को नाभि से डेढ़ या दो इञ्च की दूरी पर नाल बाँधना उचित है। इससे कम दूरी पर उसे कभी भी बाँधना उचित नहीं है। क्योंकि, नाभि के बिल्कुल पास में नाल को बाँधने से यदि किसी प्रकार वह खुल गई तो उसे दूसरे स्थान पर बाँधने की जगह नहीं रह जाती। किन्तु, इस प्रकार दूरी पर नाल को बाँधने के बाद भी यदि आवश्यकता हो, तो नाभि के पास एक बार और उसे बाँधा जा सकता है। बन्धन सदा ही इतना सख्त होना आवश्यक है कि नाल से खून बाहर नहीं निकल सके और बाहर के कीटाणु भीतर प्रवेश नहीं कर सकें। पहली ग्रन्थि से एक-दो इञ्च की दूरी पर एक और गाँठ लगाना चाहिए। इन दोनों बन्धनों के बीच में नाल को काटना उचित है। बन्धन के बिलकुल पास में नाल को काटना ठीक नहीं है। ऐसा करने पर वह खुलकर बाहर निकल सकती है।

नाल काटने के बाद जब यह निश्चित हो जाय कि शिशु की नाभि से रक्त बाहर निकलना बंद हो गया है, तब उसको स्नान

कराकर साफ कर लेना चाहिए। इस समय स्नान के लिए हमेशा ही गरम पानी उपयोग में लाना आवश्यक है। स्नान कराते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि शिशु के सिर का पानी उसकी आँखों में नहीं गिरने पाए। इस समय उसकी बगल, जांघों के जोड़, एवं कान और नाक आदि स्थानों को अत्यंत सावधानी से साफ़ करना चाहिए उसके बाद शिशु के शरीर को अच्छी तरह पोंछकर और उसे गरम तौलिए में लपेटकर साफ बिस्तर पर सुला देना उचित है।

आरंभ से ही, शिशु की नाभि की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। नाभि संबंधी यथेष्ट सावधानी बरतने और सफाई रखने से धनुष्टङ्कार आदि रोग कभी भी नहीं हो सकते। नाल को हमेशा सूखी रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह गीली रही, तो उसके अलग होने में विशेष देरी लगती है(Dr. Nandi-Midwifery and its Home-Treatment, p. 123)। नाल को सुखा लेने के बाद नारियल के तेल में गीले किए गए कपड़े के किसी टुकड़े या साफ रुई से उसे ढक देना चाहिए। इस कपड़े को प्रतिदिन बदलना जरूरी है। साधारणतः तीन से छः दिनों के भीतर नाल अलग हो जाती है। उसके अलग हो जाने के बाद भी नाभि पर नारियल का तेल लगाना चाहिए (Surgn. Genl. Sir pardy Lukis, M.D., F.R.C.S.—An Elementary Manual of Midwifery, p. 112)।

जन्म के बाद कुछ समय तक शिशु को विश्राम देकर माता का स्तनपान करने देना चाहिए। इस समय माता के स्तन में दूध नहीं होता, किन्तु उसके स्तनों से केवल एक प्रकार का साफ रस निकलता

रहता है। तथापि शिशु को तीन-चार दिनों तक यह रस ही पीने देना जरूरी है। यह रस सन्तान के लिए हलके जुलाब का काम करता है। इसके अतिरिक्त इससे माता की स्तनग्रंथियों को दूध उत्पन्न करने की यथेष्ट उत्तेजना मिलती है और प्रसव के बाद संतान द्वारा स्तनपान के कारण स्नायविक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जरायु संकुचित होता है।

दो

नवजात शिशु के रोग

श्वासरोध [Still-birth]

जन्म होते ही शिशु रोने लगता है। इससे उसके फेफड़े फैल जाते हैं और उनके भीतर हवा जाने की सुविधा हो जाती है।

किन्तु, कभी-कभी बच्चा जन्म के बाद रोता नहीं है, उसकी नाक से श्वास प्रश्वास नहीं चलती, उसका मुँह नीला और फीका दिखाई देता है, उसकी नाड़ी नहीं चलती या बहुत कम चलती है तथा कभी-कभी हृदय की गति बन्द हो जाती है। ऐसी हालत में बच्चे को देखने से मृत जैसा मालूम होता है, किन्तु उसमें प्राण होते हैं।

साधारणतः जन्म के समय अधिक खींचातानी के फलस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। नाक और मुँह में अधिक कफ जम जाने पर भी कभी-कभी ऐसा हो जाता है।

जन्म के बाद यदि शिशु नहीं रोए, तो अविलम्ब ही उसकी आँखों और मुँह पर पानी के छींटे मारना चाहिए। यदि उसका कोई परिणाम नहीं निकले, तो उसे उलटा सुलाकर उसके मेरुदंड और पुट्ठे पर हलके हाथ से थपथपाना उचित है। ऐसा करनें से श्वास आसानी से चलने लगती है और शिशु रो उठता है। ऐसी अवस्था में शिशु के गले में अंगुली डालकर गले से कफ आदि बाहर निकाल देना जरूरी है। यदि आवश्यकता हो, तो बच्चे के दोनों पैर पकड़कर उसे कुछ सेकंडों के लिए आकाश में लटका रखना चाहिए। यदि इससे भी बच्चा नहीं रोए, तो उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे बार-बार उठना और बार-बार बैठना पड़ता है। इस समय उसकी नाक को दबाकर उसके मुंह में फूँक मारना चाहिए। अपने मुंह में यथेष्ट हवा भरकर धीरे-धीरे ही फूँक मारना आवश्यक है। ये सब उपाय काम में लाने पर भी यदि कोई लाभ न हो, तो शिशु को कुछ सेकंडों तक गरम पानी में रखने के बाद ही ठंडे पानी में रखना चाहिए। इस प्रकार के गरम-ठंडे पानी का स्नान (alternate bath) उसे बार-बार कराया जाए। इन उपायों को कामों में लाने से प्रायः हमेशा ही मृतप्राय शिशु फ़िर से जीवित हो उठता है।

मूत्ररोध

[Retention of Urine]

कभी-कभी जन्म के थोड़े ही देर बाद ही बच्चे को पेशाब आता है। किन्तु, प्रायः बारह से चौबीस घंटे के भीतर उसे पेशाब नहीं उतरता। यहाँ तक कि कभी-कभी दूसरे और किसी-किसी समय तो तीसरे दिन पहली बार पेशाब आता है।

यदि यथासमय बच्चे को पेशाब नहीं आए, तो उसके तलपेट के नीचे स्थित मूत्र थैली (bladder) के ऊपर गरम-ठंडा (alternate compress) प्रयोग करना चाहिए। साधारणतः आधे मिनट तक हलका गरम सेंक करने के बाद आधे मिनट ठंडा देकर तीन-चार बार गरम-ठंडा प्रयोग करना आवश्यक है ।

यदि दूसरे दिन भी पेशाब नहीं आए, तो तलपेट के नीचे गरम-ठंडे का प्रयोग करने के बाद, पान का डंठल लगाकर बच्चे को टट्टी कराई जाए, तो उसके साथ ही साथ उसे पेशाब भी आ जाएगा।

मलरोध

[Retention of Stool]

जन्म के समय बच्चे की आँतें, पित्त और आँवपूर्ण मल (meconium) से भरी रहती हैं। जन्म के कुछ मिनटों के बाद ही शिशु हरे या काले रंग की टट्टी करता है और यह संचित मल तीन दिनों तक बाहर होता रहता है। तीसरे दिन के बाद मल कुछ हरा और कुछ मिट्टी के रंग का होता है। छठे दिन मल साफ हल्दी के रंग जैसा होता है।

यदि शिशु यथासमय टट्टी न करे, तो वह रोता है, छटपटाता है और उसे कई प्रकार की तकलीफ होती है।

दो माह की आयु हो जाने तक यदि उसे कभी टट्टी नहीं आए, तो एक पान के डंठल को सामान्य नारियल के तेल में भिगोकर शिशु के मलद्वार में बिलकुल धीरे-धीरे प्रवेश करना चाहिये। ऐसा करने से

अपने आप ही मल का वेग उठेगा और मल के साथ ही साथ डंठल भी बाहर निकल पड़ेगा।

नाभि से रक्तस्राव

[Umbilical Haemorrhage]

कभी-कभी शिशु की नाभि से रक्तस्राव होने लगता है। साधारणतः नाल का बंधन टूट जाने से ही ऐसा होता है। यदि बंधन सख्त न हो और उसके कारण ही नाल अलग हो जाए, तो भी ऐसा हो सकता है। किन्तु, इस प्रकार का रक्तस्राव साधारणतः जन्म के बाद दस-पन्द्रह मिनटों के भीतर ही होता है।

नाल के अपने आप ही अगल हो जाने से पहले ही शिशु को पानी में बैठाकर स्नान कराने अथवा कुछ अधिक देर तक गरम पानी में स्नान कराने से नाभि का बन्धन कई बार ढीला हो जाता है और उसके बाद रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है।

कभी-कभी जन्म के बाद के पाँचवें या सातवें दिन भी शिशु की नाभि से थोड़ा-थोड़ा रक्त निकलता रहता है। किसी-किसी समय तो बच्चे की नाभि से बहुत अधिक रक्तस्राव होने लगता है। नाल के सूखकर अलग हो जाने के बाद भी समय-समय पर रक्तस्राव होता है। यदि इसे यथा समय बन्द नहीं किया जा सके, तो इससे शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

जन्म के तुरन्त बाद ही शिशु की नाभि से जब रक्तस्राव होने लगे, तब ही सम्भव हो, तो नाल के बन्धन को ठीक कर देना उसकी चिकित्सा है। यदि यह सम्भव न हो, तो समय खोए बिना ही नाभि पर ठंड पानी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। खून बहना

बन्द होते ही इस पट्टी को हटा लेना उचित है और आवश्यकता होने पर फिर से उसका प्रयोग करना चाहिए।

स्नान के समय बन्धन ढीला हो जाने के कारण यदि रक्तस्राव होने लगा हो, तो तुरन्त ही नाभि को उँगली से दबा देना चाहिए और उसके बाद शिशु को पोंछकर कमरे में लाते ही नाभि पर जल-पट्टी का प्रयोग करना आवश्यक है।

जन्म के कुछ दिनों बाद यदि रक्तस्राव हो, तो ऐसा साधारणतः शरीर अत्यधिक गरम हो जाने के कारण होता है। जिन बच्चों को ठंड लग जाने के डर से हमेशा ही आवश्यकता से अधिक गरम कपड़ों से ढककर रखा जाता है अथवा जिन्हें स्नान से भी बचाया जाता है, उन्हें ही साधारतः यह शिकायत होती है।

शिशु को कभी रक्तस्राव हो, तो तुरन्त ही उसकी नाभि को अँगुली से दवा देना चाहिए। ऐसा करने पर खून बहना बन्द होते ही, जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी, बच्चे की नाभि पर ठंडे पानी की पट्टी रखना आवश्यक है। इस समय उसके सिर को धोकर ठंडा कर लेना चाहिए और सारे शरीर को गीले गमछे से पोंच देना उचित है। उसके हाथ-पैर हमेशा ही गरम रखना जरूरी है। विशेषकर इस बात का ध्यान रखना उचित है कि वे ठंडे नहीं होने पाएँ। बच्चे के पैर यदि ठंडे हों, तो उसे हमेशा मोजे पहिनाए रखना चाहिए। हाथ-पैर यदि अधिक ठंडे हो जाएँ, तो सूखे तौलिए को गरम कर उससे उसके हाथ-पैर गरम कर लिए जाएँ। किन्तु, उसके शरीर पर कभी भी अत्यधिक गरमी का प्रयोग करना ठीक नहीं है। ऐसा करने से रक्तस्राव बढ़ सकता है। उसे आवश्यक बस्त्र पहिनाकर

२

खुली हवा और ठंडी जगह में रखना चाहिए।

इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है कि शिशु का पेट साफ है अथवा नहीं। साफ न हो तो तुरन्त ही पेट साफ कर लेना चाहिए। इसके लिए मलरोध चिकित्सा देखिए।

नाभि की सूजन

[Inflammation of the Navel]

नवजात शिशु की नाल साधारणतः पाँच से नौ दिनों के भीतर गिर पड़ती है। उसके बाद नाभि के ऊपर एक प्रकार का घाव हो जाता है। इस घाव के सूखने में साधारणतः बारह से पन्द्रह दिनों का समय लगता है। यदि किसी कारण से नाभि का घाव नहीं सूखे और उस पर सूजन आ जाए, तो उसे नाभि की सूजन कहते हैं।

साधारणतः माता के गन्दे हाथों के स्पर्श से, मैल-कुचैले कपड़े की पट्टी बाँधने के कारण या जोर से पट्टी बाँधने से नाभि पक जाती है। स्नान के बाद नाभि को गीली रखने से भी ऐसा हो सकता है।

इसलिए जो भी वस्त्र नाभि के सम्पर्क में आते हैं, वे यथासम्भव स्वच्छ होने चाहिए। नाभि को स्पर्श करने से पहले माता को अपने हाथ को भी अच्छी तरह धो लेना जरूरी है।

नाभि पर सूजन आ जाने पर साधारण स्थिति में नाभि पर दिन में दो बार गरम-ठण्डा (alternate compress) का प्रयोग करने से सूजन चली जाती है। प्रत्येक बार एक मिनट गरम सेंक देने के बाद ही एक मिनट के लिये ठण्डे पानी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए और एक समय में तीन बार यह प्रयोग करना आवश्यक है।

नवजात शिशु का ज्वर

[Fever of the New-Born]

जन्म के समय बच्चे के शरीर का ताप प्रायः १००° होता है। उसके कुछ समय बाद ही ताप प्रायः दो डिग्री कम हो जाता हैं। इसके कुछ दिनों बाद शरीर का ताप ९८'५ रहता है और स्वास्थ्य अवस्था में पूरे बाल्यकाल में यही ताप रहता है।

बच्चों के शरीर का ताप बहुत जल्दी बढ़ जाता है। थोड़ी-सी थकावट, उत्तेजना या गरमी के कारण उनके शरीर का ताप प्रायः १०० तक हो जाता है।

जन्म के बाद शुरू के कुछ दिनों तक, शिशु को कुछ बुखार-सा रहता है। माता के स्तन में दूध आने के पहले साधारणतः इस प्रकार का बुखार मालूम देता हैं। शिशु को पानी नहीं देने के कारण ही साधारणत: यह ज्वर आता है।

बच्चे को यदि कुछ घण्टों तक पानी नहीं दिया जाए, तो अक्सर उसके शरीर का ताप बढ़कर बुखार की सीमा रेखा तक आ पहुँचता है। गर्मियों के दिनों में यदि उसे बिना पानी के ही रखा जाए, तो कभी-कभी उसके शरीर का ताप १००° से १०२° तक हो जाता है। ऐसी सभी स्थितियों में बच्चे को बार-बार पानी पिलाने से ही बुखार अपने आप कम हो लाता है। बुखार के समय बच्चे को हर २४ घंटों ८ से १२ बार तक पानी पिलाना चाहिए (Wilfred J. Pearson F.R.C.P. Recent Advances in Diseases of Children, p. 47)।

यदि यह मालूम पड़े कि शिशु का बुखार किसी तात्कालिक कारण से नहीं आया है, तो तुरन्त ही उसका पेट साफ कर लेना चाहिए (इसके लिये 'मलरोध' देखिए)। पेट साफ हो जाने पर हमेशा ही बुखार की कमर टूट जाती है। इसके अतिरिक्त दो-एक दिन टट्टी साफ नहीं होने के कारण भी बच्चे के शरीर का ताप कई अवस्थाओं में बढ़ जाता है और उसका पेट साफ कर देने से ही बुखार चला जाता है। बच्चे के शरीर के रोमकूपों आदि को भी खुले और सक्रिय बनाए रखना चाहिए। इसके लिए बुखार आते ही बच्चे के सिर को दिन में तीन बार धोकर उसके सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना जरूरी है। पानी हमेशा ही समशीतोष्ण रखना आवश्यक है।

— :o:—

तीन

शैशवकाल की स्वास्थ्यनीति

[Hygiene of Infancy]

[१]

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में, इङ्गलैंड में जितने भी शिशु जन्म लेते थे, उनमें से लगभग आधे एक वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते काल के मुँह में चले जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में भी शिशु-मृत्यु-संख्या प्रति हजार १५० से अधिक हीं थी। उसके बाद बीसवीं शताब्दी में यह संख्या दिनोंदिन कम होती जा रही है। सन् १९१० में

शिशु-मृत्यु का यह अनुपात १०५, १९२० में ८०, १९३० में ६० और १९५२ में इस संख्या का अनुपात कम होते-होते ३१ में उत्तर आया।

पृथ्वी के अन्य सभ्य देशों में भी शिशु-मृत्यु का अनुपात इसी प्रकार कम होता जा रहा है। किन्तु, यह बात शैशवकाल की स्वास्थ्य-नीति पर समुचित ध्यान देने के कारण ही सम्भव हो सकी है।

स्वच्छता और नियमितता का अभाव तथा आहार की गड़बड़ी बच्चों के स्वास्थ्य खराब होने का प्रमुख कारण है।

शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए स्वच्छता की सबसे पहले आवश्यकता है। खासकर खाद्य, भोजन, वर्त्तन, बिस्तर और कपड़े आदि के संबंध में इस सावधानी की सबसे अधिक आवश्यकता है।

जिस बोतल से बच्चे को दूध पिलाना हो, उसे हमेशा ही गरम पानी से धोकर साफ रखना चाहिए। प्रत्येक बार दूध पिलाने से पहले और बाद में माता के स्तनों को भी धोकर साफ कर लेना उचित है। यदि बच्चे को बाहर का दुग्ध पिलाया जाए, तो उसका यथासंभव शुद्ध होना आवश्यक है और उसे घर लाकर यत्न से ढककर रखना चाहिए।

शिशु के लिए उपयोग में लाए गए तौलिए आदि गंदे होते ही घर से बाहर निकालकर धो लिए जाएं और उन्हें धूप में सुखा लेना चाहिए। यदि कोई तौलिया थोड़ा भी गीला हो गया हो, तो उसे केवल सुखाकर ही काम में नहीं लाना चाहिए। बच्चे का बिस्तर भी यथासंभव साफ और सूखा रखना उचित है। इसके लिए सप्ताह में दो दिन सारे बिस्तर को धूप में सुखा लेना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि **sun and air are the best germ-killers**—

कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए सूर्य और हवा के समान अन्य कोई भी वस्तु नहीं है (Sir F. Truby King, C.M.G., M.B., B Sc.—Feeding and Care of Babies, p. 13)।

शिशु यदि कुछ बड़ा हो, तो उसके खिलौने के चुनाव में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। जिन खिलौनों को आसानी से धोया और साफ किया जा सके, वे ही बच्चों को दिये जाएँ। उसे अँगुली कभी भी नहीं चूसने देनी चाहिए। जब वह घुटने चलना सीखे, तब वह फर्श पर से या आँगन में से गन्दी चीजें उठाकर मुंह में न रख ले, इस बात को हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है।

सभी बच्चे को प्यार करेंगे यह बिल्कुल स्वाभाविक बात है, किन्तु किसी को भी बच्चे का चुम्बन नहीं करने देना चाहिए। एकबार अमेरिका में बच्चों का एक स्वास्थ्य जुलूस निकला। उसमें शामिल प्रत्येक बच्चे के हाथ में एक आदर्श वाक्य था। उसमें से एक वाक्य था, Don't kiss me, you may have some disease—मुझे मत चूमिये। आप किसी रोग से ग्रस्त हो सकते हैं।

[२]

सभी बातों में नियमितता (regularity) भी आवश्यक है। आहार, निद्रा, स्नान, मलत्याग और व्यायाम के सम्बन्ध में उसका पालन विशेष रूप से आवश्यक है।

बच्चे को हमेशा ही निश्चित समय पर खिलाना चाहिए। छः मास की आयु तक सुबह के पाँच बजे से रात के दस बजे तक उसे दिन में छः बार खिलाना उचित है। साधारणतः इस उम्र में तीन घंटे के अन्तर से उसे भोजन दिया जाए। छः से नौ महीने की आयु तक

उसे दिन में पाँच बार और चार घंटे के अन्तर से खिलाना उचित है। इसके बाद दिन में पाँच बार भोजन देना ठीक है। किन्तु, रात्रि के दस और सुबह के पाँच बजे के बीच उसे कुछ भी नहीं खिलाना चाहिए। इस समय बच्चा यदि नींद में उठ जाये और रोना शुरू कर दे, तो उसे केवल पानी दिया जा सकता है।

प्रतिदिन निश्चित समय पर ही खिलाने-पिलाने से शिशु के पाचक-अंगों और माता के स्तनों—दोनों को ही पर्याप्त विश्राम मिलता है। उसके परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर बच्चे का पेट ठीक रहता है, वहीं दूसरी ओर माता के स्तनों में भी दूध की कमी नहीं रहती।

बच्चे के रोना शुरू करते ही हमारी माताएँ उसके मुंह में स्तन देकर उसे चुप कराती हैं। इससे शिशु के भोजन की समय ठीक नहीं रहती और ऐसा करने से बच्चा आवश्यकता से अधिक आहार ले लेता है। शिशु कुछ बड़ा होने पर घर का कोई व्यक्ति जब भोजन करने के लिये बैठ जाय, तभी उसके साथ वह बैठ जाता है। ऐसे बच्चों को पेट की विभिन्न बीमारियाँ, कई अवस्थाओं में तो इसी अनियमित और अव्यवस्थित आहार के कारण ही हो जाती हैं। बच्चों के सम्बन्ध में इस नियम का कड़ाई से पालन करना चाहिए कि दोनों बार के भोजन के बीच के समय में उसे कुछ भी खाने को नहीं दिया जाएगा। शिशु और वयस्क सभी लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा का यह एक प्रमुख नियम है।

शिशु के कुछ दिनों तक निश्चित समय पर भोजन देने से वह उसका अभ्यासी हो जाता है और समय हुए बिना भोजन के लिये नहीं रोता।

बच्चा यदि कुछ खाना नहीं चाहे तो उसे जबर्दस्ती या मिठाई

आदि का लोभ दिखाकर कभी भी अधिक नहीं खिलाना चाहिए। अपनी इच्छा से वह जितना खाना चाहे, केवल उतना ही उसे खाने को देना उचित है।

शिशु यदि मुख्य रूप से तरल खाद्य ही लेता हो, तो भी उसे बार-बार पानी पिलाना उचित है। जन्म के बाद से ही, उसे इसकी आदत डालनी चाहिए। नवजात शिशु का पेशाब प्रायः ही पीले रंग का और गाढ़ा होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि बच्चे को बार-बार पानी पिलाना उचित है। हर दो बार दूध पिलाने या अन्य कोई खाद्य उसे खिलाने के बीच में उसे एक बार अवश्य ही पानी पिलाना चाहिए। गर्मियों में ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक है। हर बच्चे को उसके खाद्य के अतिरिक्त हर रोज चार से छः औंस तक पानी पिलाना उचित है (Donald Peterson, M.D, F.R.C,P.—Sick children, p. 128)।

यदि शिशु बड़ा हो जाए, तो भी उसकी पानी की आदत बनाए रखना जरूरी है, और बढ़ने के साथ ही साथ जल की मात्रा भी क्रमशः बढ़ानी चाहिए। किन्तु भोजन के समय उसे ज्यादा पानी पीने देने से पाचक रस पतला और दुर्बल हो जाता है तथा भोजन का पूर्ण लाभ शरीर को नहीं मिलता।

नियमित रूप से पानी पिलाने से यथेष्ट मात्रा में पेशाब आता है और शरीर का काफ़ी विष पेशाब के साथ बाहर निकल जाता है। फलस्वरूप स्वास्थ्य हमेशा ही अच्छा रहता है।

बच्चे का पेट साफ रहे, इस बात का भी हमेशा ध्यान रखना जरूरी है। यदि पेट के भीतर मल जम जाए और उसका दूषित रस

प्रतिक्षण शरीर में मिलता रहे, तो किसी भी उपाय से शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए प्रतिदिन सुबह और शाम को निश्चित समय पर बच्चे को पेरों के ऊपर बैठाना चाहिए। कुछ दिनों तक यह अभ्यास जारी रखने से बच्चे का पेट साफ रखने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। बड़ा हो जाने के बाद भी यह अभ्यास जारी रखने के लिये उसे सदा उत्साहित करना चाहिए।

[३]

जीवन की सभी स्थितियों में स्वास्थ्य के लिये स्नान करना आवश्यक है। बच्चे को प्रतिदिन निश्चित समय पर स्नान कराना विशेष रूप से जरूरी है। पहले-पहल स्नान के पानी को धूप में गरम कर लेना चाहिए। उसके बाद क्रमशः जल को ताप कम करके समशीतोष्ण जल से या ठंडे पानी से स्नान कराया जाए। यह बात कभी भी मन में नहीं लानी चाहिए कि बच्चे को ठंडे पानी से स्नान कराने से ठंड लग जाएगी। वरना उसे धीरे-धीरे ठंड पानी का आदी बना लेने पर उसे इतना जल्दी सर्दी लगेगी ही नहीं (J. H. Kellog, M.D.—Handbook of Hygiene and Medicine, p. 132)। सच पूछा जाए, तो ठंड लगने की संभावना से ही दूर रखने का सबसे प्रमुख उपाय ठंड पानी से स्नान कराकर चमड़ी को शीतल जल का आदी बना लेना है (William D. Zoethout—A Text-book of Physiology, p, 360)। किन्तु बच्चा यदि कमजोर हो अथवा अस्वस्थ हो जाए, तो अस्थायी रूप से कुछ दिनों के लिए स्नान बन्द कर देना चाहिए और उसके बदले में उसके सिर को धोकर गरम या समशीतोष्ण जल

में भिगोए हुए तौलिए से उसका सारा शरीर पोंछ देना उचित है। रोग की स्थिति में प्रतिदिन दो-तीन बार ऐसा करना उचित है।

स्नान से पहले इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना जरूरी है कि बच्चे का शरीर गरम है अथवा नहीं। उसका शरीर यदि ठीक तरह गरम न हो, तो उसे ठंडे पानी से भी स्नान नहीं कराना चाहिए (J. P. Muller—My System, p. 17)। इसके लिए स्नान से पहले हमेशा ही शरीर पर मालिश कर शरीर को गरम कर लेना उचित है—Massage occupies a valuable place in therapeutics of infancy—शिशु रोगों की चिकित्सा में मालिश का एक महत्वपूर्ण स्थान है (J. P, Crozer Griffith, M.D., Ph.D.—The Diseases of Infants and Children, Vol. I, p. 249)। स्वास्थ्य बनाए रखने की दृष्टि से भी मालिश अत्यन्त लाभदायक है। इससे रक्त-संचार और परिपाक क्षमता बढ़ती है, यकृत आदि सभी अंगों का कार्य अच्छी तरह चलता है, एकाएक ठंड लगने से रोग होना असंभव हो जाता है, कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है, और पेशाब भी साफ आता है। मालिश से सबसे अधिक लाभ तब होता है, जब कि बच्चे की प्रतिदिन धूप में मालिश की जाय।

नियमित रूप से धूप का सेवन बच्चे के लिए अत्यन्त हितकारी होता है। प्रतिदिन उसे धूप में रखने से उसकी चमड़ी साफ होती है, शरीर में यथेष्ट मात्रा में लाल रक्त उत्पन्न होता है, शरीर के समस्त अंग सक्रिय हो उठते हैं तथा उसकी रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है (Bhavanrav Shrinivasrav, Raja of Aundh—Surya

Namaskars, pp. 75-79)। ऐसा करने से सूखा (रिकेट्स) आदि रोग भी नहीं होते और शरीर की वृद्धि ठीक तरह से होती है।

किन्तु बच्चे को हमेशा ही सिद्धांतानुसार धूप में रखना चाहिए। उसे धूप में ले जाने से पहले हमेशा ही उसके सिर को धोकर गीले गमछे से पोंछ लेना उचित है तथा उसे धूप में रखते समय उसके सिर और मुंह को हमेशा ही छाया में रखा जाए। ठण्ड के दिनों में धूप अच्छी तरह निकल आने के बाद ही उसे धूप में ले जाना चाहिए। गर्मियों के समय, उसे केवल सुवह ही धूप में ले जाया जाए। बरामदे के भीतर आनेवाली सूर्य की रोशनी में बच्चे की मालिश करने से भी यथेष्ट लाभ उठाया जा सकता है (Birch's Management and Medical Treatment of Children iu India and Tropics, p. 74)। तीन-चार सप्ताह की आयु से ही, बच्चे को धूप में रखना चाहिए (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. III, p. 148)। शिशु को बिलकुल ही नंगे बदन धूप में रखा जाए। पहले-पहल उसे केवल एक मिनट के लिए धूप में रखना उचित है। उसके बाद धीरे-धीरे हर कुछ दिनों में एक-एक मिनट समय बढ़ाना चाहिए। बच्चा जब एकबार धूप का आदी हो जाए, तो अंत में उसे देर तक धूप में रखा जा सकता है।

बच्चे को खुली हवा का आदी बना लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि खुली हवा में रखने से बच्चे को सर्दी लग जाएगी। इसके विपरीत, उसे खुली हवा में नहीं रखने से ही सर्दी लग सकती है। शिशु को बहुत दिनों तक बन्द कमरे में रखने से उसके शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता कम पड़ जाती

है और उसके श्वास-अंग रोगग्रस्त हो जाते हैं। बंद कमरे की हवा अत्यन्त विषैली हो जाती है। वह जीवनी-शक्ति का ह्रास करती है और शरीर में सहज ही सर्दी लग जाने के अनुकूल अवस्था उत्पन्न करती है (Sir F. Truby King, C.M.G., M.C., B.Sc. —Feeding and Care of Baby, p. 13)। समय-समय पर काफी समय तक बाहर रखकर जिन बच्चों का शरीर सख्त (hardened) बना लिया जाता है, उन्हें आसानी से सर्दी नहीं लगती।

किन्तु बच्चे को बहुत धीरे-धीरे खुली हवा का आदी बनाना चाहिए। शुरू-शुरू में उसे दस से बीस मिनट तक ही खुली हवा में रखना काफी है। उसके बाद उसे बाहर रखने के समय में दिनों दिन वृद्धि करना चाहिए। जब बच्चा खुली हवा का आदी हो जाए, तब उसे सारे दिन खुले बरामदे में घूमने दिया जाए (The British Encyclopaedia of Madical Practice, Vol. III, p. 148)।

किन्तु अत्यधिक ठंडी हवा से बच्चे को हमेशा ही बचाना चाहिए। जिस दिन बादल हों या कुहासा छाया हुआ हो, उस दिन बच्चे को किसी भी हालत में घर से बाहर निकालना ठीक नहीं है।

बहुत अधिक सर्दी के दिन बच्चे को घर के भीतर इस प्रकार रखना चाहिए कि वह घर के भीतर ही यथेष्ट ताजी हवा में खेल सके और सनसनाती हवा उसके शरीर में लगने न पाए।

शिशु को माता के साथ कभी नहीं सोने देना चाहिए। वयस्क लोगों के पास विशेषतः एक ही मच्छरदानी में बच्चे को लेकर सोने

से, वयस्क लोगों के शरीर से निकली हुई गैस और खराब श्वास बच्चे के शरीर को विषाक्त बना देती है। इसलिए उसका बिस्तर हमेशा ही माता की मच्छरदानी के पास अलग ही लगाना चाहिए। ऐसा करने से शिशु श्वास-प्रश्वास में न केवल शुद्ध वायु ही ले सकेगा, अपितु माता भी अनिश्चित समय पर बच्चे को दूध पिलाने से बच सकेगी।

शिशु को बहुत अधिक कपड़े पहनाना कभी भी उचित नहीं है। उसे अत्यधिक कपड़े पहनाने से वह चिड़चिड़ा, अस्थिर और कमजोर हो जाता है। उसे अच्छी तरह नींद नहीं आती, शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता कम पड़ जाती है और उसे सर्दी बहुत जल्दी लग जाती है। गर्मियों के दिनों में उसे यथासंभव काफी समय तक, नंगे बदन रखना चाहिए। अन्य ॠतुओं में उसे केवल उतने ही कपड़े पहनाए जाएँ, जितने कि उसे ठंड से बचाने के लिये काफी हों। किन्तु बच्चे का शरीर ठंडा नहीं होने पाए, इस बात का हमेशा ध्यान रखना जरूरी है।

[४]

बच्चे के लिए व्यायाम भी विशेष रूप से आवश्यक है। हाथ पैर फेंकते हुए खेलना, घुटनों के बल चलना और उसके बाद खड़ा होना तथा चलना बच्चे के लिए अति उत्कृष्ट व्यायाम हैं। शिशु को गोदी में लेकर घुमाना भी उसके लिए एक प्रकार का व्यायाम है। कमजोर बच्चों को गोद में लेकर घुमाना ही उसके शरीर के लिए व्यायाम का काम देता है। रोना भी बच्चे के लिए एक उत्तम व्यायाम है। It is indeed an excellent breathing exercise and has a decided gymnastic value— यह श्वास-प्रश्वास का

एक उत्तम प्रकार का व्यायाम है और इससे निश्चित रूप से व्यायाम का फल मिलता है (J. H. Kellogg, M.D.—Hygiene of Infancy, p. 46)। इसलिए बच्चे को रोते ही चुप नहीं कराना चाहिए। किन्तु दर्द और प्यास आदि कारणों से यदि बच्चा रोए, तो उसे हमेशा ही तुरंत चुप करने का प्रबंध करना उचित है।

कुछ बड़े होने पर शिशु जो चिल्लाकर खेलते हैं, वे भी उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है। वे शिशु जो गंभीर प्रकृति के माता-पिता के हाथों में पड़कर, घर के अंदर गोलमाल या खेल-कूद नहीं कर सकते, उनका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

उम्र की वृद्धि के साथ-साथ, शिशु को सदा ही उसकी उम्र के अनुसार खेलों में उत्साह देना उचित है। किन्तु छोटे व दुर्बल शिशुओं को कभी भी जबर्दस्ती पैदल नहीं चलाना चाहिए। चलने के उपयुक्त होने पर शिशु अपने आप ही चलने की चेष्टा करता है। किन्तु हड्डियों के मजबूत होने के पहले ही शिशु को जबर्दस्ती चलाने पर उसके आजन्म पंगु हो जाने की सम्भावना है। अधिकांश रूप में पांव व मेरुदण्ड के टेढ़ापन का कारण यही है।

शिशु के मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण करने की चेष्टा अति शैशवकाल से ही करना चाहिए। उसके अन्दर आत्मत्याग, निर्भीकता, दया आदि गुणों के बीज जीवन के प्रारम्भ में ही बोये जा सकें, इसके लिए यत्न करना आवश्यक है। किन्तु छः वर्ष के पूर्व उसे पढ़ने-लिखने के लिए जोर देना सर्वथा अनुचित है। असमय में जोर देने पर कुछ भी लाभ नहीं होता। बरन् इसीलिए अनेक समय चक्षुरोग, रीढ़ का टेढ़ापन, मंदाग्नि, स्नायविक उत्तेजना एवं स्वास्थ्य की खराबी

आदि विभिन्न लक्षण प्रकाश में आते हैं (J. P. Crozer Griffith, M.D., Ph.D. The Diseases of the Infants and Children, Vol. I, p. 78)। छः वर्ष के बाद भी दस वर्ष तक उसे रोज तीन-चार घण्टे के लिये पढ़ने-लिखने के भीतर रखना ही काफी है। सात वर्ष के बाद शिशु का दिमाग आंशिक रूप से श्रम करने योग्य हो जाता है। तब नियमित रूप से उसको पाठ शुरू करा देना उचित है। अन्यथा शिशु आलसी और बेकार हो जाता है।

शिशु के शरीर पर कभी आघात नहीं देना चाहिए। एक सज्जन का कहना है—Discipline maintained by rod butralizes human nature—अगर बेंत से शिक्षा चले, तो मनुष्य पशु हो जाता है। शिशु को सब काम से प्रेम करा लेना चाहिए। जहाँ प्रेम से काम नहीं होता, वहाँ समझना चाहिये, हम लोगों का प्रेम ही दुर्बल है।

—:o:—

चार

शिशु-रोग और उनकी चिकित्सा

जिन कारणों से वयस्कों को रोग होते हैं, उन्हीं कारणों से बच्चों को भी रोग होते हैं।

शरीर का कोई भी रोग क्यों न हो, उसका मूल कारण देह में

संचित विषाक्त और दूषित पदार्थ होता है। वह न हो, तो कोई भी रोग नहीं हो सकता।

यह प्रश्न उठ सकता है कि बच्चे के शरीर में दूषित पदार्थ कहाँ से आ सकते हैं? लेकिन उसके शरीर में दूषित पदार्थ आ ही नहीं सकते यह विचार ही एक भ्रम है।

जन्म के समय बच्चे की आँतें, पित्त और कफ से युक्त मल से भरी रहती है। जन्म के कुछ ही मिनटों के भीतर ही प्रकृति इस मल को शरीर से बाहर करना प्रारम्भ कर देती है तथा कई दिनों तक यह मल बाहर होता रहता है। यह मल यदि यथासमय शरीर से बाहर नहीं निकल सके, तो उसकी विषक्रिया के परिणामस्वरूप बच्चा जल्दी ही अस्थिर हो उठता है और उससे उसे कई प्रकार के रोग हो जाते हैं।

बच्चे का पेशाब यथासमय बाहर निकलना चाहिए। वह यदि यथासमय बाहर नहीं निकल सके, तो शरीर में विष के रूप में परिणत हो जाता है और भारी विपत्तियाँ बुला लाता है।

बच्चा कभी-कभी जन्म के समय गले के भीतर अनेक प्रकार की श्लेष्मा लेकर जन्म लेता है। इस कारण कई बार तो बच्चा जन्म के बाद जोर से चिल्लाकर रो नहीं पाता।

इन सभी दूषित पदार्थों को लेकर बच्चा इस पृथ्वी पर आता है। जन्म के बाद यदि ये यथासमय शरीर से बाहर न हो सकें, तो उसके शरीर में अनेक रोग-लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर आने के बाद भी बच्चे को माता का स्तनपान कराया जाता है। इसलिए जन्म के बाद ही शिशु को परिपाक-कार्य का भार भी अपने ऊपर लेना पड़ता है। जन्म के कुछ

महीनों बाद बच्चे को गाय का दूध दिया जाता है। यदि ये सभी खाद्य ठीक तरह से नहीं पचें, तो उसके शरीर में विष-क्रिया उत्पन्न करते हैं।

शरीर की इन विभिन्न अवस्थाओं में समय-समय पर विभिन्न कीटाणु भी शरीर की दूषित हालत पर बढ़ते हैं और विभिन्न विष उत्पन्न कर शरीर में विष की मात्रा बढ़ाते हैं। इन सभी विषों के आक्रमण और शरीर की आत्मरक्षामूलक व्यवस्था के परिणामस्वरूप विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

मोटे तौर पर, शरीर में दूषित पदार्थ के संचय को ही रोग कहते हैं। कीटाणुओं का विष भी इसी के अंतर्गत आता है। अतएव रोग की चिकित्सा क्या होगी ? शरीर को भीतर और बाहर से धोकर साफ कर देना ही रोग की चिकित्सा है। जब शरीर के भीतर रोग का कारण ही नहीं रहेगा, तब अपने आप ही सभी रोग दूर हो जाएँगे।

हमारे शरीर में सदा ही अनेक प्रकार के विष उत्पन्न होते रहते हैं। प्रकृति उन्हें मल, मूत्र, पसीना और निश्वास-वायु के रास्ते बाहर कर हमें हमेशा ही स्वस्थ रखती है। रोग होते ही प्रकृति के इन मार्गों के जरिये शरीर में संचित विष और दूषित पदार्थों को बाहर कर हम बच्चे को अच्छा कर सकते हैं।

इसलिए कोई भी रोग क्यों न हो, सबसे पहले बच्चे के पेट को साफ कर लेना चाहिए और उसका पेशाब साफ हो तथा उसके शरीर के रोम-कूप खुल जाएँ, ऐसी व्यवस्था करना उचित है।

इसके अतिरिक्त यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि हमारा शरीर एक सक्रिय यन्त्र है। इसके भीतर ही रोग-प्रतिरोध की और

३

रोग ठीक करने की पूरी व्यवस्था है। इसलिये साथ-ही-साथ शरीर के मुख्य-मुख्य अंगों को चंगा कर लेना जरूरी है।

अर्थात् वयस्कों की चिकित्सा के समान बच्चों की चिकित्सा के लिए भी तीन बातें आवश्यक हैं। सबसे पहले तो शरीर को दोष-मुक्त करना चाहिए। दूसरे, शरीर के आत्मरक्षामूलक अंगों को चंगा करना जरूरी है और अन्त में रोग की विशेष अवस्था ओर ध्यान दिया जाए। किन्तु उपचार हमेशा ही ठीक-ठीक होना चाहिए और बच्चे के शरीर की अवस्था के साथ हिसाब लगाकर सर्वदा उसका प्रयोग करना उचित है। ऐसा करने पर हमेशा ही लाभ होगा।

ज्वर

[Fever]

जब शरीर में विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थों का भार बढ़ जाता है, तब किसी-किसी अवस्था में प्रकृति शरीर का ताप बढ़ाकर रोग-विष को जला (oxidise) डालना चाहती है तथा शरीर के विभिन्न रास्तों से उसे बाहर निकाल देने का प्रयत्न करती है। प्रकृति की इस चेष्टा विशेष का ही नाम ज्वर है।

इसलिए बुखार को जबर्दस्ती कभी भी दबाना नहीं चाहिए। जबर्दस्ती बुखार को दबा देने से उसका मूल कारण नष्ट नहीं होता। उसे जबर्दस्ती दबा देने से वही बाद में चर्मरोग, हृदय की दुर्बलता और मानसिक रोग के रूप में वापस आ जाता है (Kilka—Natural Ways of Cure, pp. 15-23)।

इसलिए बुखार आते ही, वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, शरीर को दोषमुक्त कर लेना आवश्यक है। जिस कारण से रोग होता है, उस कारण को ही जब शरीर से बाहर कर दिया जाता है, तब अपने आप ही रोग दूर हो जाता है।

ज्वर के समय पेट को साफ कर, नीबू के रस के साथ काफी पानी मिलाकर, बार-बार रोगी का शरीर भींगे तौलिए से पोंछकर तथा पेट ठण्डा रखकर इस उद्देश्य का साधन किया जा सकता है।

बुखार किसी भी कारण से क्यों न आया हो, सबसे पहले समय खाए बिना ही पेट साफ कर लेना चाहिये (कोष्ठबद्धता देखिए) और हमेशा ही साफ रखना उचित है। कई बार तो केवल पेट साफ कर देने से ही बुखार की कमर टूट जाती है।

बुखार के समय रोगी को नीबू का रस मिलाकर बारबार पानी पिलाना चाहिये। ऐसा करने से प्रकृति पेशाब के साथ काफी विष बाहर निकाल देने में समर्थ होती है। इसके अतिरिक्त हमारे शरीर में जो विष उत्पन्न होता है, वह एक प्रकार का अम्ल जातीय पदार्थ होता है (William Howard Hay, M.D.—Health via Food, p. 252)। नीबू जैसे अम्ल जातीय फल, यद्यपि वे स्वाद में अम्ल होते हैं तदपि वे परिपाक होने पर एक प्रकार के क्षार जातीय पदार्थ में परिणत हो जाता है (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet, p. 230) और खून के अम्लविष को नष्ट करते हैं। इसलिए केवल बुखार में ही नहीं, सभी रोगों में रोगी को नीबू का रस मिलाकर बार-बार पानी पिलाना चाहिये।

बच्चे का सिर दिन में तीन-चार बार ठंडे पानी से धोकर उसके सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना आवश्यक है। ऐसा करने से चमड़ी के रास्ते से काफी रोग-विष शरीर से बाहर निकल जाता है और शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता भी काफी बढ़ जाती है।

यदि बच्चे को बुखार काफी हो, तो ठंडे पानी में गीला किया गया एक तौलिया बच्चे के पेट पर रखकर गरम होते ही उसे बार-बार बदल देने से शरीर का ताप बहुत जल्दी कम हो जाता है (Prof. Dr. F. Lust—The Treatment of Children's Diseases, p. 249)।

गीले तौलिए से शरीर पोंछने से हर बार दस मिनट तक रगड़-रगड़कर पेट को ठण्डा कर लेने से भी पेट के भीतर कीटाणुओं की वृद्धि रुक जाती है और बुखार बहुत जल्दी कम हो जाता है।

इस सरल चिकित्सा का उपयोग करने से ही १०० में से ९० ज्वर के रोगी ठीक हो जाते हैं। क्योंकि शरीर जब विभिण्न मार्गों के द्वारा विषमुक्त हो जाता है और जब उसका रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है, तब उसके रोगी रहने का कोई युक्तिसंगत कारण ही नहीं रह जाता।

बुखार की हालत में बच्चे को अत्यधिक गरम कपड़े कभी भी नहीं पहनाना चाहिए। जब बच्चे का शरीर शुष्क और आग की तरह गरम होता है और जब बच्चा गरमी के मारे छटपटाता है, तब उसके शरीर पर और अधिक कपड़े लाद देना अत्यन्त हानिकारक होता है। ऐसा करने से हल्का ज्वर भी कठिन बुखार में परिणत हो सकता है (*Birch's Management and Medical Treat-*

ment of Children in India and Tropics, p. 194)।

ठंड और कँपकँपी होने पर रोगी को हमेशा ही हल्के वस्त्र से ढक देना चाहिए। किन्तु यदि रोगी के सिर और कपाल आदि स्थानों पर पसीना आ जाए, तो बच्चे के शरीर को गले तक सूखे तौलिए आदि से ढककर पसीना आने में सहायता पहुँचाई जा सकती है।

बुखार के रोगी का कमरा हमेशा विशेष ठण्डा होना आवश्यक है। ज्वर के रोगी को गरम कमरे में रखने से उसके शरीर का ताप बहुत अधिक बढ़ सकता है (Macfadden's Encyclopaedia of Physical Culture, pp. 2054-2056)।

रोगी के पथ्य को ठीक रखना भी रोग की एक मुख्य चिकित्सा है। साधारणतः जोर बुखार में और हर नए रोग में प्रकृति अपने घर की सफाई करने में लग जाती है। इस कारण रोगी कुछ खाना पीना नहीं चाहता। उस समय रोगी को अधिक खिलाने से प्रकृति को शरीर की सफाई के काम को छोड़कर खाद्यद्रव्य के परिपाक और परिशोधन आदि कार्य में फिर से लग जाना पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप रोग बढ़ जाता है और वह बहुत दिनों तक स्थायी होता है।

इसलिए बच्चे को ऐसे समय बहुत कम खाने को देना चाहिए। यदि बच्चा माता के दूध पर ही निर्भर हो, तो उसे मुख्य रूप से माता के दूध पर रखना ही उचित है। किन्तु ऐसे समय केवल आधे समय तक ही उसे दूध पीने दिया जाए।

बच्चा यदि तीन महीने का हो गया हो, तो उसे पानी मिलाकर फल का रस पथ्य के रूप में दिया जा सकता है। कमला नीबू, बिजोरा नीबू और अनारस आदि खट्टे फलों का रस बहुत लाभदायक

होता है। रोगी को मौसम्बी आदि फलों का रस भी दिया जा सकता है। बच्चा जितना ही छोटा हो, फल का रस उतना ही हल्का होना चाहिए। पहली उत्कट अवस्था पार हो जाने के बाद रोगी को पतला मट्ठा, छेने का पानी और यदि बच्चे की आयु छः मास से अधिक हो, तो सामान्य लता-पत्ती और तरकारी का यूष देना चाहिए।

रोग के साथ युद्ध करने के लिए और शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ाने के लिए बिटामिन 'ए' और 'सी' बहुत आवश्यक होते हैं। धनिए की पत्ती, चौलाई का शाक, चने का शाक, परवल का पत्ता, पालक का शाक और गाजर में प्रचुर मात्रा में 'ए' विटामिन होता है। इन सभी शाक-तरकारियों का यूष बड़े बच्चों के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है। विटामिन 'सी' आग में बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है। इसलिए विटामिन 'सी' के लिए रोगी को मट्ठा, अनारस, कागजी नीबू, कमला नीबू, बिजोरा और नाशपाती आदि देना चाहिए। छाती सम्बन्धी यदि कोई दोष हो, तो बच्चे को मट्ठा या कच्चे नारियल का पानी देना बिलकुल उचित नहीं है। बुखार सम्बन्धी सभी रोगों में रोगी को पानी मिलाकर शहद देना चाहिये।

बड़े बच्चे बुखार के समय यदि तरल पथ्य लेते-लेते ऊब जाएँ, तो उन्हें सेव और नासपाती जैसी चीजें चबाकर खाने के लिये दी जाएँ। किन्तु उनका केवल रस ही लेना चाहिये और गूदा फेंक देना जरूरी है।

बुखार के समय ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि बच्चे को पूरा-पूरा आराम मिले।

गाल-फूलना

[Mump]

कान के सामने की ओर तथा नीचे की तरफ जो ग्रंथि (parotid gland) है, उसके प्रदाह का नाम गाल फूलना है। यह लार पैदा करनेवाली एक ग्रंथि है। इस नली (duct) गाल को पार कर मुंह के अन्दर खुलती है। इस रोग में सबसे पहले यह ग्रन्थि सूज जाने पर भी उसके बाद साधारणतः मुंह की लार उत्पन्न करनेवाली अन्य ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं।

इस रोग के आक्रमण से एक-दो दिन पहले साधारणतः थकावट का अनुभव होता है, बुखार-सा मालूम होता है और गले में वेदना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। उसके बाद रोग प्रकट होने के साथ ही साथ प्रबल वेदना के साथ मुंह एक तरफ फूल जाता है और उसके बाद मुंह के दूसरे भाग में भी वेदना और सूजन बढ़ जाते हैं। उसके साथ ही साथ शरीर का ताप बढ़ जाता है और बुखार १०१° से १०४° तक हो जाता है। सूजा हुआ भाग कभी भी लाल नहीं होता और उससे पीब भी नहीं निकलती। बुखार जल्दी ही कम हो जाता है और सूजन भी चार-पाँच दिनों के भीतर चली जाती है।

अतएव यह कोई घातक रोग नहीं है। किन्तु इस रोग के समय रक्त में जो विष संचारित होता है, वह शरीर के विभिन्न अंगों पर आक्रमण करके बहुत हानि पहुँचा सकता है। कभी-कभी तो इससे गुना (pancreas) का प्रदाह भी उत्पन्न हो जाता है और कई बार तो उससे मधुमेह (diabetes) रोग हो जाता है कभी-कभी इससे

मस्तिष्क की स्नायु की सूजन (meningitis) रोग भी प्रकट होता है।

अतएव इस रोग को कभी भी मामूली नहीं समझना चाहिए।

गाल में सूजन का रोग साधारणतः चार से पन्द्रह वर्ष तक के बालक-बालिकाओं को होता है। किन्तु वयस्क लोगों को यह रोग नहीं होता हो, ऐसा भी नहीं है। उन्हें यह बहुत कम होता है।

रोग प्रकट होते ही रोगी को नीबू का रस मिला हुआ गरम पानी का एक डूस तुरन्त देना आवश्यक है और जब तक रोग के सभी लक्षण जाते न रहें, तब तक प्रतिदिन एकबार डूस दिया जाए। डूस के पानी में नींबू का रस मिला देने से वह पानी आँतों की मल निःसारक क्षमता बढ़ाता है तथा जिस दूषित परिस्थिति में कीटाणुओं की वृद्धि होती है नीबू का रस उस परिस्थिति को भी नष्ट करती है (Sir William Howard Hay, M.D.—Health via Food, p. 219)।

इसलिए सभी रोगों में नीबू का रस मिलाकर डूस देना चाहिए।

रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी पिलाना आवश्यक है और उसका सिर दिन में तीन बार ठंड पानी से धोकर उसके सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना चाहिए। यदि रोगी का बुखार बढ़ जाए, तो तौलिया-स्नान (sponge bath) के बदले में घर्षण-स्नान (cold friction) का प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है।

तौलिया-स्नान आदि की प्रतिक्रिया से रोम-कूप के रास्ते से शरीर का काफी विष बाहर निकल जाता है।

इन सभी उपायों द्वारा शरीर के विभिन्न रास्तों से देह-संचित

विष जब बाहर निकल जाता है, तब सामान्य स्थानीय चिकित्सा (local treatment) से ही रोग ठीक हो जाता है।

गाल का सूजन कम करने का मुख्य उपाय है आक्रान्त स्थान पर गरम-ठंडे का प्रयोग करना। पाँच मिनट सेंक करने के बाद एक मिनट के लिए ठण्डे का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रयोग एक समय में तीन बार और सुबह तथा शाम को करना आवश्यक है। इसके प्रयोग करने से पहले सिर को अवश्य ही अच्छी तरह धोकर ठंडा कर लिया जाए। गरम-ठंडे प्रयोग के बाद इस स्थान पर आधा इंच गीली मिट्टी का पुलटिस सूखे फ्लानेल से ढककर एक घंटे तक दिन में दो बार बाँधना चाहिए।

इस रोग के कारण चबाना-खाना सम्भव नहीं होता। अतएव रोगी को बिलकुल पतला खाद्य पदार्थ देना चाहिए। पथ्य साधारण ज्वर के समान हो। इसके लिए ज्वर की चिकित्सा देखिए।

इस रोग को बहुत संक्रामक कहा जाता है। इसलिए रोगी को हमेशा ही अलग बिस्तर में और सम्भव हो, तो अलग कमरे में रखना चाहिए। रोग दूर हो जाने के बाद भी कुछ दिनों तक उसे अलग रखना आवश्यक है।

चेचक

[Measles]

यह रोग शरीर में फूट-फूट कर निकलता है। जो कि एक से पाँच साल के बच्चों को साधारणतः होता है और जीवन में एकबार से अधिक नहीं होता। यह बचपन का एक अत्यन्त सामान्य रोग है

तथा वयस्क लोगों में प्रायः नहीं देखा जाता। किन्तु यदि यह उन्हें हो जाए, तो बहुत भयंकर रूप धारण करता है। सर्दी, खाँसी, छींक, नाक से पानी आना, आँखों में पानी आना और उनका लाल हो जाना, जोर-जोर से थोड़ी-थोड़ी खाँसी, आवाज बिगड़ जाना और पीठ तथा हाथ पैरों में दर्द से यह रोग प्रारम्भ होता है। बुखार १०२° से १०४° तक रहता है। साथ ही साथ नाड़ी जल्दी चलने लगती है, सिर दुखता है तथा प्यास और बेचैनी आदि लक्षण प्रकट होते हैं। कभी-कभी मरोड़ (convulsions) भी होता है। इस रोग के दूसरे या तीसरे दिन बुखार साधारणतः कम हो जाता है। उसके बाद बुखार के तीसरे या चौथे दिन चेचक निकलने के समय बुखार फिर बढ़ जाता है। ऐसे समय बुखार का ताप कभी-कभी १०५° तक हो जाता है और उसके साथ ही साथ सर्दी आदि लक्षण भी बढ़ जाते हैं। चेचक, शुरू में मुंह, कपाल, गर्दन और कान के पीछे निकलती है। बाद में वह सारे शरीर में फैल जाती है। प्रारंभ में वह आलपिन की नोंक के बराबर छोटी-छोटी और कुछ-कुछ लाल दिखाई देती है। उसके बाद शीघ्र ही फूटे मटर के समान बड़ा और कुछ-कुछ लाल हो उठती है। इस समय मुंह फूल उठता है। मुंह फूल उठने से और नाक तथा आँखों से पानी आने से ही समझ लेना चाहिए कि बच्चे को चेचक हो गई है। यह इस रोग का प्रधान लक्षण है। दो-तीन दिनों तक चेचक निकलती है और उसके बाद धीरे-धीरे मिट जाती है। उसका मिटना प्रारम्भ होते ही बुखार भी कम हो जाता है और सात दिनों के भीतर रोग का और कोई भी लक्षण नहीं रह जाता।

कभी-कभी तो चेचक इतनी कम निकलती है कि रोगी उसकी परवाह ही नहीं करता। किन्तु कभी-कभी उसके साथ ब्रँकाइटिस, अतिसार, रक्तातिसार और प्रलाप आदि के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। यदि चेचक बैठ जाए या उसका रंग बहुत अधिक काला या लाल हो, तो उसे बहुत अशुभ लक्षण मानना चाहिए।

इस रोग के समय यदि यथेष्ट मात्रा में रोग विष को शरीर से बाहर निकालने की व्यवस्था नहीं की जाए, तो रोग के बाद बच्चे का स्वास्थ्य ही प्रायः खराब हो जाता है। कई बार तो उसके शरीर की विभिन्न ग्रंथियाँ फूल उठती हैं और कभी-कभी शरीर के भीतर तपेदिक के कीटाणुओं की वृद्धि के उपयुक्त स्थिति निर्मित हो जाती है।

यह एक प्रकार का छुआछूत का रोग है और इस प्रकार के छुआछूत के रोग इस पृथ्वी में कम ही हैं।

किन्तु बीमार के शरीर का स्पर्श हो जाने से ही दूसरे किसी को यह रोग लग जाए, ऐसी बात नहीं है। एक ही घर में किसी को चेचक होती है, किसी को नहीं। अतएव केवल छुआछूत से ही यह रोग नहीं होता। जिनके शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों के इकट्ठा हो जाने के कारण पहले से ही रोग-उत्पत्ति के अनुकूल स्थिति निर्मित हो चुकी है, केवल वे ही इस रोग से ग्रसित होते हैं।

यदि बच्चे के शरीर को सभी प्रकार से दोषमुक्त रखा जाय और बाहरी स्वच्छता रहे, तो उसका रोगी होना ही कठिन होता है। यदि वह रोगग्रस्त हो भी गया, तो भी उसके शरीर को दोषमुक्त कर फिर से उसका स्वास्थ्य ठीक किया जा सकता है।

इसलिए रोग होते ही उबाला हुआ समशीतोष्ण नीम पानी से एक डूस देकर रोगी का पेट साफ कर लेना चाहिए। और जब तक रोग के सारे लक्षण चले न जाएँ, तब तक प्रतिदिन सुबह एकबार डूस देना उचित है।

रोगी का पेशाब साफ रखने के लिए उसे खूब पानी पीने दिया जाए। हर एक घंटे के बाद तीन-चार औंस पानी उसे देना आवश्यक है। इसके बाद रोम-कूप खोलने की ओर ध्यान देना चाहिए। यह रोग साधारणतः सर्दी से शुरू होता है। अतएव पहली अवस्था में रोग समझ में नहीं आने पर भी, यदि बच्चा छोटा हो, तो उसे ४५ मिनट के लिये और यदि वह दस वर्ष से अधिक का हो, तो एक घंटे के लिए छाती की लपेट देनी चाहिए। सर्दी बहुत अधिक हुई हो, तो दो-तीन दिनों

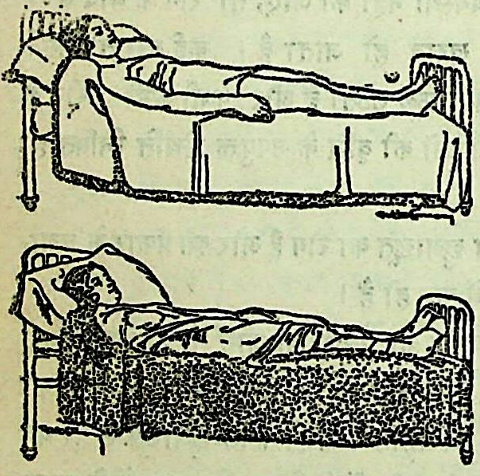

गीली चादर की लपेट
(wet-sheet pack)

तक यह पट्टी दी जा सकती है।

यदि चेचक अच्छी तरह नहीं निकली हो तो, डूस देने के बाद बच्चे को ४५ मिनट के लिए गीली चादर की लपेट (wet-sheet pack) देनी चाहिए। ऐसा करने से सारे शरीर में चेचक निकल आती है और आफत टल जाती है।

बच्चे के सिर को दिन में तीन बार धोकर उसके सारे शरीर को थोड़े गरम या समशीतोष्ण जल में डुबे हुए तौलिए से पोंछ देना चाहिए। यदि बुखार १०३° या १०४° हो, तो कईबार सिर धुलाकर साधारण पानी में भिगोए गए तौलिए से सारा शरीर पोंछ देना उचित है। लेकिन इस रोग में तौलिए से शरीर रगड़ना नहीं चाहिए। शरीर पर तौलिए बिछाकर ऊपर से हाथ से रगड़ना उचित है। पहले थोड़े गरम पानी में भिगोए गए तौलिए से शरीर पोंछकर क्रमशः जल की गरमी कम की जाए और अंत में ठंडे पानी में डुबोए तौलिए से स्नान समाप्त किया जाए। किन्तु यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि बच्चे का शरीर बिल्कुल ठंडा नहीं होने पाए।

इस रोग में काफी ताजी हवा की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। इससे ब्रंको-निमोनिया होने का भय निश्चित रूप से दूर हो जाता है (J. P. Crozer Griffith, M. D., Ph D— The Diseases of the Infants and Children, Vol. I, P. 354)। किन्तु हवा का झोंका बच्चे के शरीर को न लगे इस बात का हमेशा ख्याल रखना चाहिए। बच्चे को इस प्रकार रखा जाय कि हमेशा ही घर के भीतर ताजी हवा आकर चली जाय, लेकिन हवा का झोंका उनके शरीर को न लगे।

रोगी के कमरे में कभी भी अंधेरा नहीं करना चाहिए। किन्तु उसकी आँखों को हमेशा ही सूर्य की रोशनी से बचाना आवश्यक है।

जितने दिन बुखार रहे, उतने दिनों तक बच्चे को बिस्तर में ही रखकर पूर्ण विश्राम देना चाहिए। यदि और कोई आफत खड़ी नहीं हो गई हो, तो केवल विश्राम से कई स्थितियों में रोग चला जाता है। बुखार ठीक हो जाने के आठ दिन बाद तक बच्चे को बिस्तर में ही रखना उचित है।

उसके नाक-कान और गले को विशेष रूप से साफ रखना चाहिए।

पूरी तरह से बुखार चले जाने तक रोगी को बुखार का ही पथ्य दिया जाए। इसके लिए ज्वर-रोग देखिए।

पांच

श्वास यंत्र के रोग

सर्दी

प्रकृति जब शरीर में संचित विष को श्लेष्मा के रूप में फेफड़े आदि के रास्ते बाहर निकालने का प्रयत्न करती है, तब उसे सर्दी कहा जाता है। सर्दी के समय छींक का आना और श्लेष्मा का निकलना इसी बात को सिद्ध करते हैं कि प्रकृति शरीर की सफाई

कर रही है। इसलिए सर्दी को कभी भी दबाना नहीं चाहिए।

साधारणतः ठंड लगकर सर्दी होती है। ठंड लगने के कारण रोम-कूप बन्द हो जाते हैं। उस समय प्रकृति रोम-कूपों के रास्ते जिन विभिन्न विषों को बाहर निकाल देती है, वे बाहर नहीं निकल पाते हैं। ये विष यदि शरीर के भीतर रह जाएँ, तो जीवन ही संकट में पड़ सकता है। इसलिए प्रकृति श्वासनली या नाक की श्लैष्मिक झिल्ली में रक्ताधिक्य और फुलाव (swelling) उत्पन्न करती है तथा उसीसे श्लेष्मा के रूप में इस विष को रक्त के जलीय अंश के साथ बाहर निकालती है। इसी का नाम सर्दी है।

इस अवस्था में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि रोम-कूप फिर से खुल जाएँ। इसके लिए सर्दी होते ही समय खोए बिना बच्चे को ४५ मिनट के लिए छाती की लपेट देना उचित है। इस लपेट के नीचे एक प्रकार की हलकी गर्मी आ जाती है। ऐसा होने पर रोम-कूप खुल जाते हैं और शरीर का विष रोम-कूपों के रास्ते बाहर निकल जाता है। फलस्वरूप देखते-देखते ही सर्दी चली जाती है। इस लपेट से केवल सर्दी ही ठीक नहीं हो जाती, बल्कि सर्दी का बुखार, इनफ्लुएंजा, ब्रंकाइटिस, ब्रको-निमोनिया और निमोनिया आदि की भी यह प्रधान

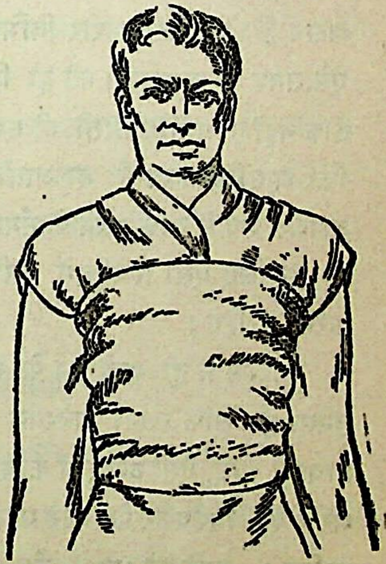

छाती की लपेट (chest pack)

चिकित्सा (F. M. Rossiter, M. D.—The Practical Guide to Health, p. 212)।

यदि बच्चे की आयु दो-तीन मास के भीतर हो, तो हमेशा ही उसे छाती की सहज लपेट दी जा सकती है।

यदि इस रोग के समय बच्चे को कोष्ठबद्धता की शिकायत हो, तो सबसे पहले उसका पेट साफ कर लेना चाहिए (इसके लिए कोष्ठबद्धता देखिए)। नहीं तो जल्दी लाभ नहीं होता।

सभी रोगों में बच्चे को नीबू का रस मिलाकर अनेक बार पानी पिलाना चाहिए।

यदि बच्चे को पुरानी सर्दी हो और बीच-बीच में उसे प्रायः सर्दी हो जाती हो, तो यह समझना चाहिए कि उसका पेट बहुत खराब है और उसका शरीर विभिन्न दूषित पदार्थों से भरा पड़ा है। ऐसे समय केवल छाती की ही चिकित्सा करने से सर्दी कभी भी ठीक नहीं हो पाती। छाती की एक बार सफाई कर लेने पर भी वह फिर देहसंचित विष से भर जाती है और सेवारवाले तालाब को आंशिक रूप से साफ रखने के समान यह प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। इसलिए ऐसी स्थिति में शरीर को ही ठीक कर लेने की चेष्टा करनी चाहिए।

आरम्भ में ही बच्चे का पेट साफ कर लेना उचित है और उसे हमेशा ही साफ रखना आवश्यक है। बच्चे को पेशाब भी यथेष्ट मात्रा में आए, ऐसी व्यवस्था करना उचित है। प्रतिदिन उसके सारे शरीर की, विशेषकर पेट और यकृत् (लिवर) की मालिश करनी चाहिए। बच्चे को धूप में तेल लगाकर मालिश की जा सके, तो

बहुत लाभ होता है। जैसे ही बच्चे का शरीर गरम हो उठे, वैसे ही शरीर के गरम रहते-रहते उसे स्नान करा दिया जाए। नहलाने के बाद भी शरीर की हल्की मालिश कर उसे हमेशा ही गरम बनाए रखना उचित है। रोगी को प्रतिदिन दो घटे के लिए पेट की पट्टी देना विशेष रूप से आवश्यक है। उसे यथासंभव अधिक समय तक खुली हवा में रखना चाहिए तथा उसके पथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिए बच्चों का खाद्य देखिए। इन सारी चिकित्सा के साथ ही साथ बच्चे को सर्दी होते ही ४५ मिनट के लिए एकबार छाती की लपेट देना चाहिए। इस प्रकार कई बार छाती की लपेट देते ही शिशु की छाती की अवस्था धीरे-धीरे सुधर जाती है और यदि पुराना ब्रंकाइटिस आदि रोग हो, तो वे भी जड़ से चले जाते हैं।

नई सर्दी में रोगी को हमेशा साधारण ज्वर का पथ्य देना ही उचित है।

पुरानी सर्दी में दूध, फल का रस, उबाली हुई तरकारी, शाक का यूष और शहद ही रोगी का प्रधान पथ्य होना चाहिए। रोगी को कच्चे नारियल का पानी, बरफ और दही देना ठीक नहीं है।

सर्दी-ज्वर

[Influenza]

कभी-कभी बच्चे को सर्दी के साथ ही साथ बुखार भी आ जाता है। उसे सर्दी ज्वर (इनफ्लुएंजा) कहा जा सकता है।

सर्दी की चिकित्सा ही सर्दी-ज्वर की चिकित्सा है। बुखार आने पर बच्चे के सिर को दिन में तीन बार समशीतोष्ण जल में गीले किए गए तौलिए से पोंछ देने के बाद सारे शरीर को पोंछ देना चाहिए। कोई भी रोग या छाती का ही कोई दोष क्यों न हो, बिना किसी हिचक के गीले तौलिए से बच्चे के शरीर को पोंछ डालना उचित है (Osler—The Principles and Practice of Medicine, p. 107)।

यदि बच्चे को कँपकँपी लगती हो, तो उसके दोनों पैरों को गरम पानी में डुबोकर अथवा पैरों के ऊपर गरम थैली रखकर उसके शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना चाहिए। बच्चे के शरीर को पोंछने से पहले गीले तौलिए को खूब अच्छी तरह निचोड़ लेना जरूरी है। पथ्य के लिए साधारण बुखार की चिकित्सा देखिए।

खाँसी

[Cough]

हमारे शरीर-यंत्र में, विशेषकर छाती के भीतर यदि कुछ गड़बड़ी हो गई हो, तो उसकी सूचना देने के लिए खाँसी प्रकृति का एक तरीका है। अथवा वह प्रकृति का danger signal—आफत की सूचना का संकेत है। यदि छाती के भीतर कफ अटक गया हो और स्वाभाविक रूप से वह बाहर नहीं निकल सकता हो, तो प्रकृति खाँसी

पैदा कर अटके हुए कफ को बाहर कर देती है तथा शरीर की रक्षा करती है। इसलिए खाँसी को जबर्दस्ती कभी भी नहीं दबाना चाहिए। एक प्रसिद्ध चिकित्सक ने कहा है—"कोई भी मूर्ख आदमी खाँसी बंद कर सकता हैं, किन्तु उससे जो नुकसान होता है, उसे दूर करने के लिए एक विद्वान की ही आवश्यकता होती है।"

छाती में कफ होने के कारण यदि खाँसी हुई हो, तो समय खोए बिना ४५ मिनट के लिए छाती की लपेट का प्रयोग कर बच्चे की छाती की सफाई कर लेना चाहिए। एक दिन में यदि छाती की सफाई न हो, तो दो-तीन दिनों तक यह लपेट दी जा सकती है। इस लपेट के कारण छाती की सफाई हो जाने पर खाँसी अपने आप चली जाती है।

यदि सुखी खांसी हो, तो छाती की लपेट का प्रयोग न कर स्नान के बाद शरीर पोंछकर सूखे हाथों से या गरम सूखे फ्लानेल से गला, छाती और पीठ को जल्दी-जल्दी किन्तु हलके हाथों से मालिश कर उन्हें लाल और गरम कर देना चाहिए। दूसरी बार भी यदि सूखी खाँसी हो, तो इन सभी स्थानों को सामान्य रूप से गीला करने के बाद हलके हाथों से मालिश कर लाल और गरम कर लेने से उसी समय सूखी खाँसी चली जाती है। सूखी खाँसी के लिए यह चिकित्सा रामबाण है।

किन्तु बहुत छोटे बच्चे के शरीर की बहुत हलके हाथों से मालिश करनी चाहिए।

कुक्कुर खाँसी

[Whooping Cough]

वायुनली-समूह का भीतरी भाग जिन झिल्लियों (membrane) से ढका हुआ है, उनके प्रदाह को कुक्कुर खाँसी कहते हैं। एक वर्ष से कम आयु के बच्चों को जो रोग होते हैं, उनमें यह रोग सबसे अधिक घातक है। किन्तु वयस्क बच्चों की स्थिति में इसे तुच्छ रोग माना जा सकता है। यह रोग साधारणतया एक से चार वर्ष के भीतर होता है और कदाचित् कभी-कभी दस वर्ष के बाद होता है।

कुक्कुर खाँसी की साधारणतया तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम अवस्था को श्लेष्मक अवस्था (the catarrhal stage) कहते हैं। यह नाक बहना, छींक, आखों में पानी आना, गले में खरखराहट बुखार की-सा स्थिति और खाँसी आदि साथ लेकर आता है। यह स्थिति दस से चौदह दिनों तक रहती है। उसके बाद दूसरी स्थिति प्रारंभ होती है। इसे आक्षेपयुक्त अवस्था (the spasmodic stage) कहते हैं। इस अवस्था में बहुत दिनों तक चलनेवाली और लगभग विरामहीन खाँसी उठती है। खाँसी एक बार शुरू हो जाने पर रुकना नहीं चाहती। बच्चा खाँसते-खाँसते तिलमिला उठता है और लाल हो जाता है। उसकी दोनों आँखों की गोलपुतलियाँ मानो बाहर निकल आना चाहती हैं। एक-एक बार का उसका आक्रमण आधे से एक मिनट तक रहता है और उसके बाद फिर खाँसो उठती है तथा ऐसा काफी समय तक चलता रहता है। अंत में खाँसी या

उलटी के साथ काफी मात्रा में चिपचिपा जलीय पदार्थ बाहर निकल आता है। उसके बाद बच्चा कुछ समय तक आराम का अनुभव करता है। रोग जितना प्रबल होता है, उतनी ही बार खाँसी आती है। कभी तो खाँसी का आक्रमण दिन में केवल एक-दो बार ही होता है और कभी-कभी एक घंटे के भीतर ही कई बार खाँसी उठती है। साधारणतः रात्रि का आक्रमण अधिक प्रबल होता है।

यह अवस्था चार से सात सप्ताह तक प्रायः चलती है। उसके बाद तीसरी अवस्था आती है। उसे आरोग्य की अवस्था (the stage of decline) कहते हैं। इस अवस्था में खाँसी क्रमशः कम हो जाती है और धीरे-धीरे अच्छी हो जाती है।

किन्तु यदि बच्चे के स्वास्थ्य पर यथोचित ध्यान नहीं दिया जाए, तो दूसरी अवस्था के अन्त में ही रोग सम्बन्धी विभिन्न जटिलताएँ आ उपस्थित होती हैं। इनमें श्वासनली और फेफड़े का सूजन, हार्निया और गुह्यद्वार का बहिर्गमन (बार बार खाँसी आने के परिणाम स्वरूप) प्रमुख हैं। कभी-कभी इसके कारण फेफड़ों में गठन (structure) संबंधी परिवर्तन भी हो जाते हैं। उसके कारण स्थायी श्वासकष्ट और दम फूलना रोग हो जाने की संभावना उत्पन्न हो जाती है।

एक प्रकार के कीटाणु को इस रोग का कारण बतलाया जाता है। यह इतनी संक्रामक व्याधि है कि रोगग्रस्त बच्चे के श्वास-प्रश्वास और कपड़ों आदि से भी दूसरे बच्चे को रोग लग सकती है।

किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि अन्य रोगों की भाँति बच्चे के शरीर में जब रोग के आक्रमण के अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो जाती है, केवल तब ही इस रोग का कीटाणु उसके शरीर में बढ़

सकता है। यदि बच्चे का शरीर स्वस्थ अर्थात् दोषमुक्त हो, तो किसी कीटाणु के कारण वह रोगग्रस्त नहीं हो सकता। रोग हो जाने पर भी उसके शरीर को फिर से ठीक कर रोग अच्छा किया जा सकता है।

इसलिए आरंभ में ही बच्चे के पेट को साफ कर लेना आवश्यक है तथा हमेशा ही उसे साफ रखना चाहिए (कोष्ठबद्धता देखिए)। शुरू से ही उसे प्रतिदिन पेट की लपेट का प्रयोग करना उचित है। इस लपेट का प्रयोग पूरी रात के लिए कराया जाए।

बच्चे को काफी पानी पीने को देना चाहिए तथा नीबू का रस मिलाकर यथेष्ट पानी उसे पिलाना उचित है। खाँसी का दौरा समाप्त होते ही हर बार उसे कुछ पानी पीने को दिया जाए।

बच्चे के सिर को दिन में दो बार धोकर एकबार स्नान कराया जाए और एक बार सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ दिया जाएं।

कुछ लोगों का कहना है कि यह एक प्रकार का स्नायविक रोग है। परिमित स्नान के द्वारा शरीर को स्निग्ध रख सकने पर, रोग का आक्रमण कम हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। खाँसी के लिए उसे स्नान कराने में कई लोग डरते हैं। किन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। The daily cold bath in the morning is of the first importance—प्रतिदिन सुबह स्नान बच्चे के लिये सर्वाधिक आवश्यक है (Melville C. Keith, M.D.--Diseases of Ghildhood, p. 435)। स्नान कराते समय गरम पानी का कभी भी उपयोग नहीं करना चाहिए। गरम पानी से स्नान कराने से बच्चा दुर्बल हो जाता है (Ibid., p. 436)। स्नान

के अन्त में शरीर पोंछ देने के बाद उसकी छाती, पीठ और गले को हलके हाथों से किन्तु जल्दी-जल्दी मालिश कर लाल और गरम कर लेना चाहिए। ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक है। क्योंकि सूखी खाँसी दूर करने का यह प्रधान उपाय है। स्नान से पहले उसके दोनों पैरों पर एक घण्टे के लिए पट्टी का प्रयोग करना

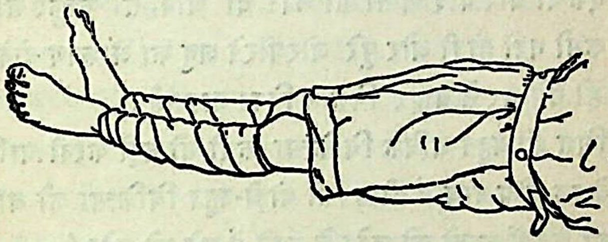

पैरों की पट्टी (foot pack)

चाहिए। इससे छाती का रक्ताधिक्य दूर हो जाता है और रोग जल्दी ही कम हो जाता है।

किन्तु इस रोग की प्रधान चिकित्सा है छाती पर गरम-ठण्डा देकर छाती की लपेट देना। एक मिनट गरम सेंक के बाद आधे मिनट तक ठंडा प्रयोग, इस प्रकार तीन बार गरम-ठंडा देना ही काफी है। वयस्क शिशुओं को दो मिनट गरम और आधे मिनट ठंडा दिया जा सकता है। किन्तु छाती को सेंक करते समय हमेशा ही हृदय के ऊपर एक छोटा किन्तु निचोड़ा हुआ तौलिया रख लेना आवश्यक है। वयस्क शिशुओं को एक घंटे के लिए और छोटे बच्चों को ४५ मिनट के लिए छाती की लपेट देनी चाहिए। तीव्र अवस्था में यह लपेट दिन में एक बार और उसके बाद एक-एक दिन छोड़कर

प्रयुक्त की जा सकती है। किन्तु यदि बच्चा अच्छा होने लगे, तो सप्ताह में दो दिन ही इसका प्रयोग करना काफी होता है।

रोग की प्रथम अवस्था में जब नाक बहना आदि के साथ यह रोग प्रारम्भ होता है, तब यह समझ में ही नहीं आता कि यह कुक्कुर खाँसी में परिणत हो जाएगा। किन्तु उस समय पेट को साफ कर लेने के बाद एक-दो बार यदि छाती की लपेट दी जाय, तो कुक्कुर खाँसी फिर कभी नहीं होती और पूरे जोरशोरसे शत्रु का आक्रमण होने से पहले ही उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है।

शिशु की बहुत अधिक चिकित्सा कभी भी नहीं करनी चाहिए और केवल बीच-बीच में ही उसकी थोड़ी-बहुत चिकित्सा की जाए। इसलिए अंत में छाती की लपेट के बदले में गले की लपेट (throat pack) देनी चाहिए।

बच्चे को यथासंभव काफी समय तक खुली हवा में रखना आवश्यक है। किन्तु आँधी-पानी से उसे सदा बचाना चाहिये। काफी प्रकाश और हवापूर्ण कमरे में बच्चे केसोने की व्यवस्था करने से खाँसी का दौरा बहुत कम हो जाता है (J. P. Crozer Griffith, M.D., Ph,D.—The Diseases of Infants and Children. Vol. I, p. 491)।

खुली हवा में रहने से रोगी को बहुत लाभ पहुँचता है। उसके खाँसी केदौरों की संख्या कम हो जाती है और अपेक्षाकृत कम समय तक रहते हैं। यदि उसे बुखार हो, तो बरामदे जैसे स्थानों में उसे रखना चाहिए और बुखार कम होते ही घर के बाहर खुली हवा में उसे खेलने दिया जाए। बच्चे को केवल उतने ही कपड़े पहनाना

चाहिए, जितने कि उसे ठंड से बचाने के लिए आवश्यक हों (British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. XII, p. 623)। वास्तव में दिन के समय घर के बरामदे आदि की खुली हवा में रखना और रात को खिड़कियाँ खुली रखना is the fundamental basis of treatment—ही इस रोग की मूल चिकित्सा है (M. G. Peterman, M. D.—The Diseases of Children, Vol. III, p. 347)।

जो बच्चे अधिक दिनों तक इस रोग से पीड़ित रहते हैं, उन्हें यदि सम्भव हो सके, तो यथासम्भव शीघ्र ही हवा बदलने के लिए समुद्रपार किसी स्थान पर ले जाना चाहिए। इससे अक्सर आश्चर्य-जनक फल होता है। उसके कमरे की हवा भी शुद्ध रहे। उसके कमरे में किरासन तेल की रोशनी या किरासन का स्टोव कभी नहीं जलाना चाहिए।

रोगी के भोजन पर भी विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। उसे एक बार में ही अधिक न खिलाकर कई बार में और थोड़ा-थोड़ा खिलाना चाहिए। उसके भोजन में ए और सी विटामिन यथेष्ट मात्रा में रहे इस पर ध्यान देना जरूरी है। (इसके लिए 'ज्वर-चिकित्सा' देखिए)। शहद इस रोग का बहुत अच्छा पथ्य है। शहद हमेशा फल के रस, दूध और छेने के पानी आदि के साथ देना चाहिए। किन्तु दही, कच्चे नारियल का पानी और बरफ इस अवस्था में बिलकुल भी नहीं देना चाहिए।

रोगी को कभी भी कोई गरम खाद्य नहीं दिया जाए। Hot food brings on attack of coughing—गरम खाद्य खाँसी

का दौरा बुला लाता है (British Encyclopaedia of Medical Practice, Voll. p. 623)।

छः

परिपाक यंत्र के रोग

शिशु का खाद्य

बच्चे के लिए माता का दूध ही प्रधान खाद्य है। यह देखा गया है कि जिन बच्चों को कृत्रिम खाद्य दिया जाता है, उनमें मातृस्तन-पायी शिशुओं की अपेक्षा मृत्युसंख्या अधिक होती है।

इसलिए यदि माता के स्तनों में यथेष्ट दूध न हो, तो बच्चे को गाय का दूध आदि देने से पहले माता का दूध बढ़ाने के लिए ही यथासंभव चेष्टा करनी चाहिए।

माता के स्तनों में दूध बढ़ाने का प्रधान उपाय है उसे काफी दूध पीने के लिये देना। दूध पिलाने से आधा घण्टे पहले हर वार उसे एक पाव पानी पीना चाहिए। उसे यथेष्ट विश्राम मिलना भी आवश्यक है। क्योंकि अधिक परिश्रम करने से स्तनों का दूध सूख जाता है। उसका पेट भी साफ रहना चाहिए।

किन्तु यथेष्ट प्रयत्न करने पर भी यदि सुफल न हो, तो आशा

LM 1B9H

छोड़ देना ठीक नहीं। प्रतिदिन निश्चित समय पर बच्चे को माता का दूध देना चाहिए और उसके बाद ही पानी मिला बकरी या गाय का दूध देकर घटती की पूर्ति कर लेना उचित है।

माता के स्तनों में यदि दूध की कमी हो, तो संभव होने पर बच्चों को हमेशा ही पानी मिला बकरी का दूध देना चाहिए। केवल इसी स्थिति में ही नहीं, अपितु सारे शैशवकाल में बच्चे को रोगमुक्त रखने के लिए बकरी के दूध के समान और कोई वस्तु नहीं है।

शुरू-शुरू में दूध में आधा पानी मिलाना उचित है। उसके बाद क्रमशः जल की मात्रा कम कर अन्त में बच्चे को बिना पानी का दूध देना चाहिए।

यदि बच्चे की आयु छः मास हो, तो उसे माता के दूध के साथ ही साथ विभिन्न फलों का रस, फल, उबाली हुई तरकारी और तरकारी का यूष देना उचित है। कमला नीबू, मौसम्बी, बिजौरा नीबू, अनारस और टमाटर आदि फलों का कपड़े से छाना हुआ रस उसको देना चाहिए। शुरू में केवल चाय की दो चम्मच के बराबर रस दिया जाए। उसके बाद धीरे-धीरे मात्रा बढ़ानी चाहिए। फल के रसों में भी कमला नीबू के रस पर अधिक जोर देना उचित है। शुरू-शुरू में उसे तरकारी का यूष दिया जाए और उसके बाद पानी में उबाली गई तरकारी दी जा सकती है। पालक का शाक, धनिया की पत्ती, गाजर, पपीता और पटल आदि बहुत अच्छे खाद्य हैं। छोटे बच्चों को आरम्भ में तात्ती शाक का केवल यूष देना ही उचित है। गाजर, पपीता और पटल आदि का यूष तथा तरकारी दोनों ही दिए जा सकते हैं।

आगत क्रमांक २३५६८
दिनांक

माता के गर्भाशय में बच्चा माता के शरीर से लोहा और विभिन्न खनिज पदार्थ लेकर अपने यकृत में संग्रह कर रखता है। किन्तु छः मास की आयु हो जाने पर बच्चे के यकृत में संचित लोहा खतम हो जाता है। इधर दूध में भी यथेष्ट लोहा नहीं होता। इसलिए छः महीने का हो जाने पर बच्चे को प्रतिदिन विभिन्न ताजी शाक-सब्जी का, विशेषतः पालक का यूष देना उचित है। चौलाई आदि ताजे शाकों का यूष भी उसे दिया जा सकता है। ऐसा नहीं करने से बच्चे के शरीर में कभी-कभी खून की कमी हो जाती है, उसका वजन बढ़ना रुक जाता है और बच्चे का रंग विवर्ण हो जाता है।

बच्चे को नौ मास की आयु तक माता का दूध देना चाहिए। उसके बाद धीरे-धीरे माता का दूध पिलाना बंद कर देना उचित है। किन्तु गर्मियों में अथवा बच्चा जब अस्वस्थ हो, तब माता का दूध बंद करना ठीक नहीं। एकाएक एक दिन में ही माता का दूध बंद नहीं किया जाए। माता के दूध के साथ ही साथ बच्चे को गाय का या बकरी का दूध देना आरंभ कर क्रमशः माता का दूध छुड़ाना चाहिए। दूध छुड़ाने में चार से पाँच सप्ताह लगना आवश्यक है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि नौ मास की आयु हो जाने के बाद बच्चे के लिए माता का दूध ही पर्याप्त नहीं होता। उस समय उसे दूसरा खाद्य नहीं देने से उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जब बच्चे के दाँत निकलते हैं तब प्रकृति ही संकेत कर देती है कि अब बच्चे को मिश्रित खाद्य देना होगा।

माता का दूध छुड़ा देने के बाद बच्चे को प्रतिदिन एक सेर दूध देना चाहिए। अन्य खाद्य की मात्रा भी इस समय बढ़ाई जाए। बच्चे

की उम्र एक साल की हो जाने पर उसे प्रतिदिन आधा सेर दूध या दही देना उचित है। यदि संभव हो तो बच्चे को दूध के बदले हमेशा ही दही दिया जाए। दूध की अपेक्षा दही जल्दी पचता है। क्योंकि उसमें दूध का प्रोटीन (Casine) नरम छेना के रूप में परिणत हो जाता है। इसलिए दूध की अपेक्षा दही सहज ही पाकस्थली त्याग करता है। दही का अम्लत्व कैलशियम के पचने में सहायता पहुँचाता है। वह कैलशियम को अपेक्षाकृत अधिक द्रवणीय बना देता है। अतएव वह सहज ही शरीर के काम में जाता है। यह पित्त क्लोमयंत्र (pancreas) और आँतों आदि परिपाक यंत्रों को पाचक-रस निकालने के लिए उत्तेजित करता है। इसलिए दही खाने से अन्य खाद्य भी अच्छी तरह पच जाता है। इसके अतिरिक्त दही का जीवाणु पेट के भीतर जाकर आँत के अंदर स्थित सभी रोग जीवाणुओं को नष्ट कर डालता है। इस कारण से बच्चे को दही खिलाने से अतिसार (डायरिया) नहीं हो सकता और मल हमेशा ही सुगठित होता है (Williams Mckin Marriott, M.D —Infant Nutrition, p. 189 to 190)। यदि गाय के दूध के दही के बदले में या उसके साथ ही थोड़ा-सा सोयाबीन का दही दिया जाए, तो लाभ और भी अधिक होता है।

किन्तु बच्चे को यदि सर्दी या मलेरिया बुखार हो, तो कुछ दिनों के लिए अवश्य ही दही देना बंद करना चाहिए।

एक वर्ष की आयु हो जाने के बाद बच्चे को बिना छने आटे की रोटी और माँड़युक्त ढेंकी से कूटा हुआ चावल दिया जाए। दाल का यूष भात में मिलाकर उसके साथ उबाली हुई तरकारी देकर खाने को

दिया जा सकता है। सूजी और दलिया इसके लिये बहुत अच्छा खाद्य है।

इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि बच्चे के खाद्य में क्षार-धर्मी पदार्थों की अधिकता हो। यथेष्ट क्षारधर्मी खाद्य देने से वह शरीर के काम में सबसे अधिक आता है, अपेक्षाकृत अच्छी दहन-क्रिया (oxidation) होने के कारण खाद्य-शेष बहुत कम रहता है, मल आसानी से शरीर के बाहर हो जाता है, शरीर में ताकत (energy) आती है और the need for food diminished—बहुत कम अन्न की आवश्यकता पड़ती है (Wilfred J. Pearson, F.R.C P.—Recent Advances in Diseases of Children, p. 169)।

साधारणतः क्षारधर्मी पदार्थ हैं—फल, फल का रस, मेवा, विभिन्न शाक-सब्जी और माता का दूध तथा धारोष्ण दूध। यह स्मरण रखना चाहिए की मछली, मांस, अंडा, भात और रोटी आदि सभी अम्लधर्मी खाद्य हैं। इसलिए बच्चे को हमेशा ही भात-रोटी आदि कम देकर फल और शाक-सब्जी एवं दूध ही देना चाहिए। भात-रोटी के बदले में पकाए हुए आलू हमेशा दिए जा सकते हैं। ये भात-रोटी की तरह शर्करा-खाद्य (carbohydrates) हैं, किन्तु भात-रोटी की अपेक्षा बहुत लाभ दायक हैं।

किन्तु यदि बच्चे की आयु छः मास नहीं हुई हो तो, उसे किसी भी हालत में श्वेतसार जाति के पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिए। क्योंकि इस अवस्था में पाकस्थली में श्वेतसार पचाने के लिए यथेष्ट रस नहीं होता (Lalit Kumar Mitra, M.B., L.M.,

D.C.H., M.M.—Modern Technique in Infant Feeding, p. 32)। संभव हो, तो जब तक बच्चे की आयु एक वर्ष न हो जाय, तब तक उसे भात, रोटी, बिस्कुट, पेठा, साबूदाना, मूढ़ी और हलुआ आदि देना ठीक नहीं, The child should have no starch until it is well over one year of age—शिशु जब तक पूरी तरह एक साल से अधिक का नहीं हो जाए तब तक उसे श्वेतसार जातीय पदार्थ देना उचित नहीं है (Bernarr Macfadden—The Encyclopaedia of Physical Culture, Vol. VIII p. 3641)। बहुत छोटे बच्चे को भी इस देश में दूध में बार्ली मिलाकर दिया जाता है। यह उसे कभी भी अच्छी तरह नहीं पचता और इसके कारण ही कई स्थितियों में तो डायरिया आदि रोग होते हैं।

शिशु को शक्कर देना भी ठीक नहीं। शक्कर में किसी भी प्रकार के विटामिन या लोहा और चूना (कैलशियम) आदि खनिज लवण नहीं होते। बल्कि वह रक्त से इन सभी बहुमूल्य वस्तुओं को खींच लेती है। इसके परिणामस्वरूप कई बार रक्तल्पता, मांसपेशी की दुर्बलता और दाँत तथा हड्डियों की विभिन्न बीमारियाँ हो जाती हैं। बहुत अधित शक्कर खाने से पाकस्थली कई बार उत्तेजित (irritated) हो जाती है तथा कभी-कभी उसमें घाव हो जाता है (Robert Hutchinson, M.D., N.R.C.P.—Food and Principles of Dietetics, P. 313)। इसलिए बच्चे को यथासंभव शक्कर के बदले में शहद देना चाहिए।

शक्कर की अपेक्षा शहद बहुत लाभदायक होती है। यह पाचक

यंत्रों की कोमल झिल्ली को कभी भी उत्तेजित नहीं करती, आसानी से और जल्दी ही शरीर के काम में आ जाती है, पेशाब भी उससे साफ होता है और यह एक प्रकार की स्वाभाविक हलकी विरेचक वस्तु है तथा पाकस्थली आदि से सबसे काम श्रम कराकर शरीर में सबसे अधिक शक्ति उत्पन्न करती है (Bodog F. Beck, M.D., and Doree Smedley— Honey and Your Health, p.32) शिशु के एक वर्ष का हो जाने पर उसे चीनी के बदले अच्छा पका हुआ केला भी खाने को दिया जा सकता है। भात-रोटी के बदले में भी उसे यथासंभव केला देना उचित है। बारह घंटों तक भिगोई गई किशमिश का पानी भी बच्चे को शक्कर के बदले में दिया जा सकता है। यह अंगूर की अपेक्षा भी पुष्टिकर (विटामिन नहीं गिने जाए तो), सुपाच्य और बहुत सस्ता है (Josiah Oldfield—The Raisin Cure, p. 40)। या बच्चे को शक्कर के बदले में राब (treacle) दी जा सकती है। इसमें विभिन्न बी विटामिन, लोहा, चूना (कैलशियम) और अन्य खनिज लवण होते हैं। इसमें गन्ने के ताजे रस के समान ही गुण होते हैं। यह शक्कर की अपेक्षा सस्ती और उससे अधिक गुणकारी होती है। दूध, दही, रोटी और अन्य जिस किसी भी पदार्थ के साथ शक्कर खाई जाती हो, उन सभी पदार्थों के साथ इसे भी खाया जा सकता है।

बच्चे के दूध में प्रायः मिश्री मिला दी जाती है। किन्तु रासायनिकों की दृष्टि में शक्कर और मिश्री एक समान ही हैं। क्योंकि मिश्री शक्कर से ही बनती है। इसलिए मिश्री के बदले में भी हमेशा ही राब, शहद या केला आदि का उपयोग किया जाए।

बच्चे का खाद्य हमेशा ही आसानी से पचनेवाला और अनुत्तेजक होना चाहिए। इसलिए उसे ज्यादा मसाला, गरम मसाला, कचौरी और समोसा आदि तली हुई चीजें और पुलाव आदि कठिनता से पचनेवाली चीजें देना ठीक नहीं।

बच्चे का भोजन हमेशा ही रोगी के भोजन जैसा होना उचित है।

पेटदर्द (उदरशूल)
[Colic]

यह शैशवकाल की एक साधारण व्याधि है। जन्म के बाद पहले से चौथे महीने तक यह व्याधि बहुत अधिक देखी जाती है। तथापि इसे कभी भी तुच्छ नहीं समझना चाहिए। कभी-कभी इससे मरोड़ (convulsive attack) और शरीर की अवसन्न अवस्था (collapse) तक उत्पन्न हो सकती है।

रोना ही इसका प्रधान लक्षण है। जब यह देखने में आए कि बच्चा लगातार रो रहा है या प्रायः जोर जोर से रो रहा है तब यह समझना चाहिए कि उसके पेट में दर्द हो रहा है। ऐसी स्थिति में बच्चे दोनों पैरों को सिकोड़ लेते हैं, पेट सख्त पड़ जाता है और अक्सर वायुपूर्ण होकर पेट फूल उठता है। बच्चा दर्द के मारे छटपटा उठता है। उसके पैर प्रायः ठंडे होते हैं और कई बार तो ओष्ठ नीले पड़ जाते हैं।

यह दर्द कभी-कभी थोड़े समय तक कभी-कभी बीच बीच में कुछ समय के अन्तर से काफी समय तक होता रहता है।

लगभग हमेशा ही आहार में गड़बड़ी के कारण यह रोग होता है। कई बार तो बच्चे को जब पहली बार गाय का दूध देना शुरू किया जाता है, तब वह उसे अच्छी तरह पचता नहीं और पेट में वायु बढ़ने के साथ ही साथ दर्द शुरू हो जाता है। दूध में यथेष्ट मात्रा में पानी नहीं मिलाने से भी वायु बढ़ जाती है। अत्यधिक खाद्य देने या अधिक बार आहार से भी अनेक बार पेट-दर्द होने लगता है। अधिक शक्कर खिलाने से भी कई स्थितियों से पेट दुखने लगता है। छः मास की अवस्था से पहले बच्चे को बार्ली देने से भी अक्सर यह वेदना होती है। वयस्क शिशुओं को कठिनता से पचनेवाला पदार्थ खिलाने से भी कभी यह रोग हो जाता है। जुलाब की दवाई का प्रयोग करने से भी कई स्थितियों में पेट-दर्द हो जाता है। अनेक मामलों में तो कोष्ठबद्धता ही इसका मुख्य कारण होती है। मोटे तौर पर पेट की किसी भी गड़बड़ी को छोड़ अन्य किसी कारण से यह रोग नहीं होता।

इसलिए पेट-दर्द किसी भी कारण से क्यों न हुआ हो, शुरू में ही बच्चे के पेट पर तीन बार गरम-ठंडा देकर एक डूश दे देना चाहिए।

बहुत छोटे बच्चे को आधे मिनट के लिए गरम सेंक के बाद आधे मिनट ठंडा देकर और इसी प्रकार एक साथ तीन बार करके गरम-ठंडा दो मिनट के लिए देना चाहिए। गरम-ठंडा हमेशा ही गरम से शुरू कर ठंड में समाप्त करना उचित है। डूश का पानी हमेशा ही कुछ गरम रहे। बच्चे की आयु के अनुसार चार से आठ औंस पानी

डूस में देना आवश्यक है। यदि बच्चा बहुत छोटा हो, तो दो से चार औंस तक पानी से काम चल सकता है। डूस के पानी में दस बूँद नीबू का रस या एक चम्मच शहद मिला देना चाहिए। डूस के साथ जब रुका हुआ मल और वायु बाहर आ जाती हैं, तब दर्द अपने आप ही कम हो जाता है।

डूस देने के बाद हमेशा ही बच्चे के पेट पर एक पट्टी (पट्टी के लिए अंतिम अध्याय देखिए) बाँध देना चाहिए। पेट पर पट्टी बांधते ही बच्चा सो जाता है। पेट दर्द होते ही यह पट्टी कुछ दिनों तक दिन में दो घंटे के लिए बाँधना आवश्यक है। पट्टी का प्रयोग करने के बाद गीला कपड़ा गरम हो उठता है ऐसा होने पर ही लाभ होता है। बच्चे के हाथ-पैर हमेशा ही गरम रखना चाहिए।

दर्द के समय बच्चे को माता का दूध या और कोई भी खाद्य देना उचित नहीं है। वेदना कम हो जाने पर बच्चे के पथ्य की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यदि बच्चे का पेट अक्सर दुखता हो, तो उसे माता का दूध पिलाने से पहले कुछ चम्मच गरम पानी पिलाना चाहिए। माता का दूध यदि भारी हो, तो गरम पानी पिलाने से वह हलका हो जाता है। उसे प्रतिदिन निश्चित समय पर कुछ कम ही खाने को देना ठीक है और दूध में शक्कर देना बंद कर दिया जाए। बच्चे की आयु यदि एक वर्ष से कम हो, तो उसे बार्ली आदि श्वेतसार जाति के खाद्य पदार्थ भी देना उचित नहीं है। उसका पेट दिन में दो-तीन बार साफ़ हो जाए, इसका विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है।

स्वयं माता के स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिये। यदि माता

यथेष्ट मात्रा में फल, सलाद आदि खाकर और नियमित रूप से व्यायाम कर अपने शरीर को ठीक रखती है, तो उसका दूध भी इतना अच्छा हो जाता है कि वह आसानी से पच जाता है और दर्द कभी भी उत्पन्न नहीं कर सकता। उसे प्रतिदिन नीबू के रस के साथ काफी पानी भी पीना चाहिए।

बच्चे को अफीम जैसी दवाइयाँ कभी भी नहीं देनी चाहिए। उससे कठिनता से दूर होने वाली कोष्ठबद्धता हो जाती है और उसके परिणाम स्वरूप वायु और पेट-दर्द बढ़ जाते हैं।

वायु

[Flatulence]

बच्चे के पेट में दर्द और वायु प्रायः हमेशा ही एक साथ होते हैं। इसलिए पेट दर्द की चिकित्सा ही वायु की भी चिकित्सा है।

पेट में वायु हो, तो हाथ में गरम तेल लगाकर बच्चे के पेट की धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए। मालिश हमेशा ही हाथों को घुमा-घुमाकर और नाभि को केन्द्र बनाकर की जाए। इससे वायु अपने आप ही बाहर निकल जाती है। अन्य बातों के लिए पेट-दर्द की चिकित्सा देखिए।

कोष्ठबद्धता

[Constipation]

संसार के श्रेष्ठ चिकित्सक सर विलियम अरबूथनट लेन ने कहा है, Constipation is the root cause of the diseases.

of civilisation.—सभ्य समाज में जितने भी रोग होते हैं, उनका मूल कारण कोष्ठबद्धता है।

आँतों के भीतर मल रुककर यदि सड़ उठे, तो उसकी विषक्रिया के कारण सारा खून ही विषाक्त हो उठता है। इसलिए ऐसा कोई भी रोग नहीं है, जो कोष्ठबद्धता से नहीं होता हो। बच्चों को जो बीमारियाँ होती है, उनमें भी प्रायः सभी का मूल कारण कोष्ठबद्धता होती है (J. H. Kellogg, M.D.—Hygiene of Infancy, p. 152)।

कोष्ठबद्धता के कारण ही बच्चों को मन्दाग्नि, अजीर्ण, सूखा रोग, शरीर की बाढ़ रुकना, चर्म रोग और स्कर्वी (scurvy) आदि रोग होते हैं (Ibid. p. 152)।

साधारणतः कोष्ठबद्धता होने से बच्चे का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता हैं। उसे नींद नहीं आती, उसकी जीभ सफेद पड़ जाती है, पेट में वायु उत्पन्न हो जाती है और पेट-दर्द होकर उसी से कई स्थितियों में तो मरोड़ (convulsion) आने लगते हैं (Wilfred J. Pearson. F.R.C.P.—Recent Advances in Diseases of Children, p. 109)। कोष्ठबद्धता होने पर बच्चे को ज्वर, रक्तशून्यता, सिर-दर्द, गुह्यद्वार का फटना (fissure) और बहिर्गमन, हार्निया तथा बवासीर हो सकते हैं (J. P. Crozer Griffith, M.D., Ph.D.—The Diseases of Children and Infants, Vol. I. p. 759)।

बहुत छोटे बच्चे को यदि कोष्ठबद्धता हो, तो उसके मलद्वार के भीतर पान का डंठल प्रविष्ट करा देने से अपने आप ही मल बाहर

निकल आता है। डँठल के सिरे पर पहले थोड़ा-सा नारियल का तेल लगा लेना चाहिए। किन्तु बच्चा यदि कुछ बड़ा हो तो आवश्यकता होने पर मध्यम आकार के चम्मच से एक चम्मच शहद सममात्रा में गरम पानी में मिलाकर काँच की पिचकारी से उसके मलद्वार में प्रविष्ट करा देना आवश्यक है।

शहद भीतर चली जाने के बाद मलद्वार को एकाध मिनट के लिए दबा रखना चाहिए या पानी में शहद या नीबू का रस मिलाकर बच्चे को डूस दिया जा सकता है। बच्चे को डूस देने की बात से ही माताएँ प्रायः डरती हैं। किन्तु यह आँतों के लिए कुली जैसा है तथा कुली की तरह ही निर्दोष है। इससे कुछ भी हानि नहीं होती और पेट में जिसकी आवश्यकता नहीं होती, केवल उसे ही साथ लेकर डूस का पानी बाहर निकल जाता है। जुलाब देने की अपेक्षा डूस देना बहुत अच्छा है (Hugh Thursfield, M A., F.R C.P.—Diseases of Children, p. 219)। किसी भी नए रोग की शुरूआत में कुछ सोच-विचार किए बिना ही डूस दिया जा सकता है। कई अवस्थाओं में तो केवल डूस देने से ही रोग चला जाता है और सभी स्थितियों में ही रोग की तीव्रता कम हो जाती है। जरूरी होने पर जितने दिनों तक आवश्यक हो, उतने दिनों तक इसको चलाया जा सकता है (Sir James Frederick Goodhart, M.D., F.R.C.P.—The Diseases of Children, p. 100)।

किन्तु बच्चे को डूस देते समय जितने कम पानी से काम चल सके, उतना कम पानी डूस में देना चाहिए।

बच्चे का पेट स्थायी रूप से ठीक रखने के लिए हमेशा ही पेट

की लपेट पर जोर देना आवश्यक है। इसे हमेशा ही अच्छी तरह निचोड़कर और ठंड के दिनों में गरम पानी में डुबाने के बाद निचोड़-कर काम में लेना चाहिए। इसे इस प्रकार बाँधना चाहिए कि लपेट के नीचे कुछ गरमी आ जाए और गीला कपड़ा बाहर नहीं निकल पाए। ऐसा करने पर ही लाभ होता है। साधारणतः दो घंटों के लिए पेट पर लपेट देने से ही बच्चे का पेट अच्छी तरह साफ हो जाता है।

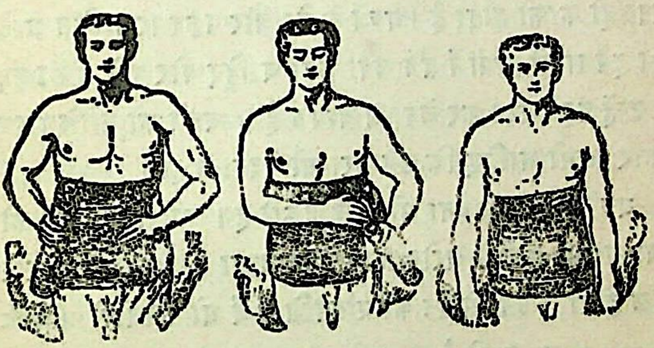

पेट की लपेट (The wet girdle)

पुरानी कोष्ठबद्धता हो तो वयस्कों की भाँति बच्चों के लिए भी मालिश एक लाभदायक उपाय है। पेट की मांसपेशियों की दुर्बलता (atony) ही कई अवस्थाओं में तो पुरानी कोष्ठबद्धता का एक प्रमुख कारण होती है। मालिश करने से पेट की मांसपेशियों की यह दुर्बलता दूर हो जाती है और कई बार तो यह बहुत थोड़े समय में ही हो जाती है (H. Illoway, M.D.—Constipation in Adults and Children, p. 452)।

पुरानी कोष्ठबद्धता की स्थिति में बच्चे के पेट और यकृत पर दिन में एक बार हल्की मालिश (friction) करना आवश्यक है। बच्चे के पेट की दाहिनी ओर नीचे दोनों हाथों को रखकर दोनों हाथों को घुमा-घुमाकर और नाभि को केन्द्र बनाकर सारे पेट पर मालिश करना उचित है। पेट पर मालिश करते समय चारों ओर की हड्डी के भीतर जो कोमल स्थान है, उस पूरे के पूरे स्थान पर मालिश करना उचित है। साधारणतः चार से छः मिनट तक मालिश करना ही काफी होता है। बच्चे के पेट और यकृत पर मालिश करते समय हमेशा ही हाथों में तेल लगा लेना चाहिए और यदि वे ठंडे हों, तो उन्हें पहले गरम कर लेना आवश्यक है। बच्चे की मालिश इस प्रकार करनी चाहिए कि उसे जरा भी वेदना न हो।

बच्चे को खेलने देना भी बहुत जरूरी है। पर्याप्त व्यायाम की व्यवस्था नहीं होने से शरीर कमजोर हो जाता है और जिससे शरीर दुर्बल होता है उसी से पेट की मांसपेशियों में भी कमजोरी (lack of tone) आ जाती है। छोटे बच्चों का पाँव पटककर खेलना पेट के लिए एक उत्कृष्ट व्यायाम है। बच्चे जब घुटने चलना सीख लें तब उन्हें इधर-उधर खेलने-फिरने के लिए उत्साहित करना सबसे अधिक आवश्यक है। जिन बच्चों को हमेशा ही बिस्तर में रखा जाता है, उनका स्वास्थ्य कभी भी ठीक नहीं रहता। बच्चा यदि कुछ बड़ा हो तो उसे उसकी उम्र के बच्चों के साथ घुल-मिलकर दौड़ादौड़ी करने देना चाहिए।

बड़ा हो जाने पर बच्चे को दिन में दो बार टट्टी जाने की आदत डालना जरूरी है। इसे उसकी आदत के रूप में परिणत कर देना

चाहिए। मल का वेग उठने पर वह मल नहीं रोके, इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है।

यदि टट्टी जाने के ठीक पहले उसके पेट पर पाँच मिनट मालिश कर दी जाए तो बहुत लाभ होता है।

किन्तु बच्चे को कोष्ठबद्धता की शिकायत होना स्वाभाविक बात नहीं है। कई अवस्थाओं में तो आहार संबंधी गलतियों के परिणाम-स्वरूप ही कोष्ठबद्धता होती है। दूध पीनेवाले बच्चे को माता द्वारा अनियमित समय पर दूध पिलाया जाना ही इसका प्रमुख कारण होता है। बच्चा अगर कुछ बड़ा हो और उसके पथ्य पर ध्यान दिया जाए, तो कोष्ठबद्धता कभी भी नहीं हो सकती। यदि कब्जियत की शिकायत हो, तो यथेष्ट फल और फल का रस खाने-पीने को देना चाहिए। बच्चे का पेट साफ रखने का यह प्रधान उपाय है। बच्चा दो महीने का हो जाए, तो उसके बाद ही उसे कुछ चम्मच कमला नीबू का रस पिलाया जा सकता है (Prof. Dr. F. Lust—Treatment of Children's Diseases, p. 141)। किन्तु छोटे बच्चों को हमेशा ही पानी मिला फल का रस देना चाहिए। शिशु के पाँच-छः महीनों का हो जाने पर, उसे दिन में दो बार कुछ फल खाने को देना उचित है। उसे कमला नीबू, मौसम्बी, टमाटर और पपीता जैसे फल दिए जा सकते हैं। अनारस और बिजौरा नीबू जैसे फलों का रस निकाल कर देना ठीक है। किशमिश का पानी बच्चे की कोष्ठबद्धता दूर करने के लिए अत्यन्त लाभदायक है। यह जहाँ एक ओर रेचक औषधि का काम करता है, वहीं दूसरी ओर एक श्रेष्ठ क्षारधर्मी खाद्य भी है। किशमिश को

बारह घंटों तक जल में भिगोए रखने के बाद उसी जल में ही उन्हें मसलना चाहिए और उसके बाद, कपड़े से छना उसका पानी बच्चे को पिलाना उचित है। बच्चे को काफी मात्रा में हरी शाक-सब्जी भी उबालकर खिलाना आवश्यक है। पालक की भाजी, पटल, तरुई, गाजर और पपीते जैसी चीजें उसे दी जा सकती हैं।

कोष्ठबद्धता के साथ ही यदि दुर्बलता भी हो, तो उसे प्रति दिन दो चम्मच शुद्ध माल्ट (pure malt extract) देना चाहिए। यह पुष्टिकर होने के साथ ही साथ रेचक खाद्य भी है। बच्चे को शक्कर के बदले शहद देना ठीक है। वह पेट साफ करती है तथा हृदय और यकृत (liver) को ठीक रखती है।

शिशु को काफी मात्रा में पानी पिलाना भी आवश्यक है। हर दो बार के भोजन के बीच में उसे एकबार अवश्य ही पानी पिलाना चाहिए। कई अवस्थाओं में तो बच्चे को यथेष्ट पानी नहीं पिलाने के कारण ही कोष्ठबद्धता होती है। सुबह बच्चे का मुंह धोने के बाद ही नीबू का रस मिलाकर प्रतिदिन पानी पिलाना चाहिए। कई अवस्थाओं में तो बच्चे को यथेष्ट पानी नहीं पिलाने के कारण ही कोष्ठबद्धता होती है। सुबह बच्चे का मुंह धोने के बाद ही नीबू का रस मिलाकर प्रतिदिन पानी पिलाना चाहिए और आदत जीवन भर बनाये रखने के लिये उसे उत्साहित करना उचित है।

माता के स्वास्थ्य की ओर भी विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। माता का दूध पीनेवाले बच्चे को कोष्ठबद्धता होते ही यह समझना चाहिए कि माता का पेट ठीक नहीं है। इसलिए छोटे बच्चे को कोष्ठबद्धता होने पर माता को यथेष्ट फल और सलाद आदि

खाने को देकर तथा माता के लिए व्यायाम की व्यवस्था कर उसकी कोष्ठबद्धता दूर कर देना आवश्यक है। माता को पूरी रात के लिए पेट की पट्टी रखनी भी विशेष रूप से जरूरी है। यदि माता का पेट साफ रहे, तो दूध पीनेवाले बच्चे को प्रायः कभी भी कोष्ठबद्धता नहीं होती (Sir F. Truby King, C.M.G., M.B., B.Sc.—Feeding and Care of Baby, p. 189)।

अतिसार

[डायरिया]

अतिसार की शिकायत बच्चों को बहुत होती है तथा यह रोग बच्चों के घातक रोगों में सबसे प्रमुख है। अधिकांश स्थितियों में यह एक से दो वर्ष तक के बच्चों को होता है और इस अवस्था के बाद, यह रोग कम होता जाता है। गर्मियों में यह रोग बहुत अधिक होता है।

इसका आरंभ साधारणतः उलटी, पेट-दर्द और पतली टट्टी से होता है। कभी-कभी तो चौबीस घंटे में बीस बार तक पतले दस्त हो जाते हैं। रोग बढ़ने के साथ ही साथ टट्टी का रंग पीले से सफेद या हरा हो जाता है। रोगी को कुछ खिलाने-पिलाने से ही दस्त लगता है। रात की अपेक्षा दिन में दस्त अधिक बार होते हैं। मल दुर्गन्धयुक्त या खट्टी बू वाला हो जाता है और कभी कभी फेनिल होता है। अपेक्षाकृत वयस्क शिशुओं के मल से नहीं पचे हुए खाद्य

पदार्थ भी दिखाई देते हैं। दस्त के साथ ही साथ पेट में वायु भर जाती है और शरीर का ताप बढ़ जाता है। बुखार प्रायः अधिक ही रहता है। साधारणतः वह १०२° से १०६° तक होता है। किन्तु ज्वर की अधिकता रोग की निशाना नहीं हैं। रोग की काफी खराब हालत में ताप कभी-कभी स्वाभाविक से भी कम हो जाता है। कभी-कभी बच्चे की आँखें बैठ जाती है और उसकी स्थिति एक प्रकार की अवसन्न (collapse) अवस्था के समान हो जाती है।

भीड़-भाड़वाले और मैले-कुचैले स्थनों में पड़े हुए बच्चों को यह रोग साधारणतः होता है। जिन बच्चों को माता का दूध नहीं मिलता और जो कृत्रिम खाद्य ग्रहण करते हैं, उन्हें यह रोग साधारणतः होता है। कई अवस्थाओं में तो खाने-पीने की गड़बड़ी के कारण ही यह रोग उत्पन्न होता है। जिन बच्चों के खाद्य की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती और जिनके खाद्य के विषय में कोई सोच-विचार नहीं किया जाता तथा जो बालक जो कुछ सामने आता है वही खा लेते हैं, उनपर साधारणतः इस घातक रोग का आक्रमण होता है।

कई हालतों में तो बच्चे को गरम और बन्द घर में रखने या उसे बहुत अधिक कपड़े पहना रखने के कारण ही यह रोग होता है। शरीर बहुत गरम हो जाने पर, पाकस्थली और आँतों का रस कम हो जाता है। अतः खाया हुआ भोजन अच्छी तरह पचता नहीं और विभिन्न कीटाणु पाकस्थली आदि में वृद्धि पाते हैं। इसलिए रोग का विस्तार आसानी से हो पाता है (Wilfred J. Pearson, F.R.-C.P.—Recent Advances in Diseases of Children पृ. 800)।

अतिसार एक प्रकार का रोग नहीं है अपितु एक प्रकार का रोग-लक्षण मात्र है। शरीर के भीतर विशेषकर पेट में कुछ विषाक्त पदार्थों का संचय हो गया है, यही उसका लक्षण है। वास्तव में आँतों और शरीर के भीतर संचित दूषित पदार्थों को निकाल बाहर करने की प्रकृति की चेष्टा को ही अतिसार कहते हैं (Longley Porter, M.D., M.R.C.S.—Management of the Sick Infant and Child, p. 51)

इसलिए दवाइयों आदि के द्वारा अतिसार को दबा देने की चेष्टा करना ठीक नहीं है। जबर्दस्ती अतिसार को दबा देने से उसका फल कभी भी अच्छा नहीं होता। अतिसार के द्वारा प्रकृति पेट और उसके साथ ही साथ शरीर की सफाई करने की जो शुभ चेष्टा करती है, दमनकारी औषधि लेने से उसमें बाधा पड़ती है और देहसंचित विष शरीर के भीतर ही रह जाते हैं। आगे चलकर वे पुराना बुखार, कोष्ठबद्धता और क्षत तथा चर्मरोग जैसे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं तथा बच्चे का स्वास्थ्य ही नष्ट कर देते हैं।

अतएव जिस कारण से रोग होता है, उसे नहीं दबाते हुए, शरीर से ही उसे बाहर निकाल देना इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

इसलिए रोग प्रकट होते ही रोगी को एक डूस तुरंत देना चाहिए (J.P. Crozer Grffifith, M.D.—The Diseases of Infants and Children, p. 738)।

डूस का पानी पेट के भीतर के कीटाणुओं, विष और गंदगी को अपने साथ लेकर बाहर निकल आता है। इसलिए रोग दूर नहीं हो जाने तक रोगी को प्रतिदिन डूस देना चाहिए। इस समय डूस के

लिए हमेशा ही गरम पानी का उपयोग करना ठीक है (प्रयोगविधि के लिए अन्तिम अध्याय देखिए)।

जिस समय बार-बार पतले दस्त होते हैं, उस समय डूस देना कई लोग अनावश्यक समझते हैं। किन्तु बार-बार पतले दस्त होने के समय ही, डूस देना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि मल के विषाक्त पदार्थ ही आँतों की दीवाल में उत्तेजना (irritation) उत्पन्न कर बार-बार दस्त लाते हैं। इसलिए केवल एक बार ही डूस दे देने से कई स्थितियों में तो पतले दस्त बंद हो जाते हैं। इस रोग के समय शरीर में जो विषक्रिया उत्पन्न होती है, उसे दूर करने के लिए बार-बार डूस देना एक श्रेष्ठ उपाय है (J. Kellogg, M.D. —Hygiene of Infancy, p. 152)।

डूस देने से पहले हमेशा ही पेट पर तीन बार गरम-ठंडी सेंक करनी चाहिए। पहले एक मिनट तक गरम सेंक करने के तुरन्त बाद ही एक गीले तौलिए को घुमाते हुए पेट को ठण्डा कर लेना चाहिए। ऐसा तीन बार किया जाए। यदि बच्चा केवल तीन-चार महीने का ही हो, तो प्रतिबार केवल कुछ सेकेंडों के लिए ही गरम-ठंडा दिया जा सकता है। किन्तु पेट यदि गरम हो तो, पहले उसे ठंडा कर लेना चाहिए। पेट पर गरम-ठंडा या ठंडा गरम देने पर पेट के भीतर का मल आसानी से नीचे चला आता है और अनायास ही डूस के जल के साथ बाहर निकल पड़ता है। अतिसार की सभी अवस्थाओं में सुबह और शाम दो बार रोगी के पेट पर गरम-ठंडे का प्रयोग करना चाहिए।

डूस देने के बाद बार-बार पेट की पट्टी का प्रयोग करना ही

इसकी प्रधान चिकित्सा है। इसका प्रयोग बार-बार करना चाहिए और जब भी यह गरम हो जाए, तब उसे बदल देना आवश्यक है। बीस मिनट से लेकर एक घंटे के लिए इसका प्रयोग करना जरूरी है। पेट यदि बहुत गरम हो, तो पेट पर एक गीला किन्तु निचोड़ा हुआ कपड़ा रखा जाए और उसे सूखे तौलिए से ढक दिया जाए। बच्चा यदि कुछ ही महीने का हो तो दो परत किया हुआ एक गीला कपड़ा रखना ही काफी है। किन्तु शिशु की आयु जितनी ही अधिक हो, उतना ही, भारी गीला कपड़ा काम में लाया जाए। दस-बारह साल की आयु होने पर रोगी के पेट पर परत किया हुआ एक गीला कपड़ा रखा जा सकता है। पहली बार प्रति पाँच-छः मिनटों में उसके गरम हो उठने पर उसे फिर ठंडे जल में डुबोकर, बाद में ढककर प्रयुक्त किया जाय। ऐसा करते-करते जैसे पेट का ताप कम होता जाए, उतने ही अधिक समय के बाद पट्टी बदली जाए और आखिर में जाकर एक घंटे के अंतर से यह पट्टी बदलनी चाहिए। अगर पेट ठंडा रहे तो पट्टी का प्रयोग करने से पहले पेट को अवश्य ही गरम कर लेना उचित है। पट्टी का प्रयोग करने के बाद भी पट्टी गरम रहे ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके लिए जरूरत होने पर पट्टी के प्रयोग के बाद बीच-बीच में गरम पानी की बोतल पट्टी के ऊपर रखनी चाहिए और प्रतिबार कम से कम एक घंटे के लिए पट्टी रखना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में यदि पट्टी एक से दो घंटे के बाद सूख जाए तो उसे बदल देना चाहिए। पट्टी का प्रयोग करने से पहले हमेशा ही यह देख लेना चाहिए कि पेट गरम है अथवा नहीं।

रोगी को नींद आ जाए, ऐसी हर प्रकार की व्यवस्था करनी

चाहिए। इसके लिए उसे ठंडी जगह में रखा जाए। कई स्थितियों में तो बच्चे के सो जाने से ही बीमारी हट जाती है।

रोगी का सिर दिन में तीन बार धोकर उसके सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना आवश्यक है। ऐसा करने से शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता (resisting power) बढ़ती है और रोग जल्दी ठीक हो जाता है।

यदि रोग प्रारंभ होते ही, चिकित्सा आरंभ नहीं की जाए, बच्चे के शरीर का ताप स्वाभाविक से नीचे चला जाए और उसका शरीर अवसन्न (collapse) जैसी स्थिति में पहुँच जाए, तो उसके सिर को ठंडा रखते हुए गरम पानी की थैली से उसके सारे शरीर को तुरंत ही गरम कर लेना आवश्यक है। बच्चे के हाथ-पैर किसी भी हालत में ठंडे नहीं होने पाएँ, इस बात का शुरू से ध्यान रखना चाहिए।

इस रोग को कभी भी मामूली रोग नहीं मानना चाहिए। यह इतना घातक होता है कि रोग होते ही उस पर यदि ध्यान नहीं दिया जाए तो रोगी को बचा पाना ही कठिन हो सकता है। इसलिए in treatment greatest promptitude is required—इस रोग की चिकित्सा में बहुत जल्दी-जल्दी चिकित्सा शुरू करना आवश्यक है (Birch's Management and Medical Treatment of Children, p. 26)।

अतिसार के लक्षण प्रकट होते ही सब खाना-पीना बंद कर देना चाहिए और जब तक रोग की तीव्रता बंद नहीं हो जाए, रोगी को उपवास कराया जाए (Wilfred J. pearson, F.R.C.P.—Resent Advances in Diseases of Children,

p. 106)। साधारण रोग में बारह घंटे और रोग अधिक हो तो ४८ घंटे के भीतर उसे कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिए। किन्तु बच्चे को ४८ घंटे से अधिक का उपवास किसी भी हालत में नहीं कराया जाए (M. G. Peterman, M.D.—The Diseases of Children, Vol. IV. p. 102)। रोगी को बीच-बीच में खाने-पीने का देना और बीच बीच में उपवास कराना एक अत्यन्त गलत धारणा है। बीच-बीच में खिला-पिलाकर उपवास कराने या अधिक समय तक थोड़े आहार पर रखने की अपेक्षा एक ही बार का लम्बा उपवास बहुत अच्छा है (Williams Mckin Marriot, M.D.—Infant Nutrition, p. 225)। अतिसार की स्थिति में तो यह बात कभी भी मन में नहीं लानी चाहिए कि बच्चा नहीं खाने से कमजोर हो जायगा। इस समय प्रकृति की सफाई (elimination) के काम में व्यस्त रहती है। इसलिए वह उस समय कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहती। जबर्दस्ती उसे कुछ दिया भी गया, तो वह कै के जरिए उसे बाहर फेंक देती है। यदि वह उसे बाहर नहीं फेंके, तो भी इस समय दिया गया खाद्य उसके कुछ भी काम में नहीं आता है और शरीर में विष का भार ही बढ़ता है (Solomon Soils Cohen, M.D.—A System of Physical Therapeutics, Vol. IV, p. 249)। अर्थात् जिस विष के संचय के कारण रोग का आक्रमण होता है और जिस विष-क्रिया के परिणामस्वरूप रोगी की मृत्यु हो जाती है, उसमें इस समय दिया गया खाद्य उसे वृद्धि ही करता है। उपवास में बच्चा थोड़ा ही कमजोर होता है। किन्तु उसमें प्रकृति को अपने घर की

सफाई करने का पूरा मौका मिलता है। इसलिए उसकी अवस्था बहुत सुधर जाती है। उसके बाद रोग पूरी तरह ठीक हो जाने के बाद उसे आहार दिए जाने पर, तेल दिए दीप की तरह चेहरे पर फिर से चमक आ जाती है और रोग के बाद उसका स्वास्थ्य भी बहुत सुधर जाता है।

इसलिए पहली अवस्था में तो रोगी को नीबू का रस मिलाकर बार-बार पानी पिलाना चाहिए। एकबार में केवल दो-तीन बूंद नीबू का रस देना ठीक है। या उसे कच्चे नारियल का पानी अथवा बहुत थोड़ा (५%) ग्लूकोज मिला पानी दिया जा सकता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हर दस्त और उलटी के साथ रोगी के शरीर से काफी जलीय पदार्थ जल्दी से बाहर हो जाय। कई स्थितियों में तो आंशिक रूप से यही रोगी की मृत्यु का कारण होता है (Encyclopaedia Medica, Vol. 5, p. 274)। इसलिए अतिसार रोग में बार-बार पानी पिलाना चाहिए। (Milton Arlanden Bridges, M.D.—Dietetics for the Clinician, p. 255)। ऐसा नहीं करने से बाकी और सारी चिकित्सा ही बेकार साबित हो सकती है। किन्तु रोगी को एक ही बार में काफी पानी पिलाना उचित नहीं। उससे उल्टी हो सकती है। पानी बहुत अधिक ठंडा भी नहीं हो। क्योंकि ठंडे पानी से आँतों की क्रमिगति (Peristalsis) बढ़ जाती है।

चौबीस घंटे में उसे कुल मिलाकर तीन पाव (one quart) पानी पिलाने देना चाहिए। वयस्क शिशुओं को इससे भी अधिक देना उचित है। यदि बच्चे को पानी पिलाना कठिन हो, तो हर एक

घंटे में मलद्वार के रास्ते दो-तीन औंस पानी भीतर पहुँचना चाहिए।

जब तक दस्त, ज्वर, पेट फूलना और अस्वास्थ्य जैसे लक्षण नहीं चले जाएँ, तब तक यही समझना चाहिए कि पेट दूषित पदार्थों से मुक्त नहीं हो सका है। इन सभी अवस्थाओं से पार हो जाने के बाद, रोगी को छेने का पानी या कपड़े से छानकर पतला मट्ठा दिया जा सकता है। रोग ठीक हो जाने के दो-तीन दिन बाद तक भी यही पथ्य चलाना आवश्यक है।

दस्त बन्द हो जाने के बाद प्रारंभ में हर चार घंटे में केवल आधा औंस खाद्य देना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। दो-तीन दिन या तीन-चार दिन के बाद चावल, दलिया दिया जा सकता है।

रोग की पहली स्थिति में ही, दूध बंद कर देना चाहिए और जब तक रोग पूरी तरह ठीक नहीं हो जाए, तब तक किसी भी हालत में दूध देना ठीक नहीं। इसके बाद जब देना आरंभ किया जाए, तो बहुत थोड़ा और आधा पानी मिलाकर दिया जाए। उसके बाद दूध की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर, पानी की मात्रा कम करना उचित है। किन्तु इस समय बीच-बीच में मट्ठा देना आवश्यक है। अतिसार का शिकायत होते ही माता का दूध भी बंद कर देना आवश्यक है। किन्तु इस समय प्रतिदिन निश्चित समय पर माता के स्तन से दूध निकाल देना चाहिए। दस्त बंद हो जाने के बाद जिस समय फिर से दूध पिलाना आरंभ किया जाए, उस समय कम से कम चार घंटे के अन्तर से और कुछ ही मिनटों के लिए माँ का दूध पिलाया जाए (Williams McKin Marriot, M.D.—Infant Nutrition, p.

258)। शक्कर और मक्खन जैसे खाद्य भी रोग के समय तथा रोग के बाद, कुछ दिनों तक बंद रखना चाहिए। क्योंकि कई स्थितियों में तो बहुत अधिक शक्कर और मक्खन जैसी चीजें देने के परिणाम-स्वरूप ही बच्चे को अतिसार की शिकायत होती है।

अतिसार के समय यदि मल हरे रंग का हो, तो यह समझना चाहिए कि शर्करा खाद्य पर वृद्धि प्राप्त करनेवाले कीटाणुओंने पेट के भीतर विस्तार लाभ किया हैं। ऐसी स्थिति में रोग ठीक हो जाने के बाद, बहुत दिनों तक बच्चे को भात, रोटी और शक्कर जैसी चीजें देना बंद कर देना आवश्यक है (Langly Porter, M.D., M.R.C.P.—Management of the Sick Infant and Child, p. 71)।

इस रोग के समय सभी प्रकार के फल देना बंद कर देना चाहिए। अतिसार में फल देने से रोग हमेशा ही बढ़ता है।

बच्चे को हमेशा ही प्रकाश और हवापूर्ण ठंडे कमरे में रखना चाहिए तथा उसे बहुत अधिक कपड़े कभी भी नहीं पहनना चाहिए।

Put not your faith in drugs. Your watch-word in the treatment of acute diarrhoea, in an infant must be two—one is starvation, the other is elimination—इस रोग में दवाइयों पर विश्वास करना ठीक नहीं। बच्चों के नए अतिसार की चिकित्सा के लिए दो संकेत वाक्य हैं, एक उपवास और दूसरा सफाई (Sir Robert Hutchinson M.D., M.R.C.P.—Lectures on Diseases of Children, p. 48)। प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त ही यही

है। इस प्रकार चिकित्सा करने से रोग बहुत आसानी से ठीक हो जाता है और रोग के बाद बच्चे का स्वास्थ्य भी सुधर जाता है। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा करने से शरीर पूरी तरह दोषमूक्त हो जाता है।

आँव

[Dysentery]

हम जो भोजन करते हैं, वह पहले पाकस्थली में जाता है। उसके बाद वह छोटी आँत (small intestine) में से होता हुआ बड़ी आँत (colon) में जा पहुँचता है। इस स्थान से ही मल अंत में बाहर निकलता है। इस बड़ी आँत के प्रदाह को ही आँव कहते हैं। जब इसमें घाव पड़ जाता है, तब उसे रक्तातिसार (खूनी पेचिश) कहा जाता है।

आँवसहित मलत्याग, चौबीस घंटों में दस से तीस या उससे भी अधिक बार आँवपूर्ण मल का आना, कभी-कभी रक्त के साथ मल और आँव निकलना, हमेशा ही मलत्याग की इच्छा होना, पेट में दर्द, पेट को स्पर्श करने पर दर्द का अनुभव और कभी-कभी जोर का बुखार, ये आँव के लक्षण हैं।

यदि दूषित मल बड़ी आँत में बहुत दिनों तक जमा रहे, तो किसी किसी अवस्था में बड़ी आँत की श्लैष्मिक झिल्ली, उसमें के कीटाणु,

कीटाणु-विष तथा मल-विष के संपर्क में आकर सूज जाती है। उस समय उसे आँव कहा जाता है।

किन्तु ये कीटाणु और गंदगी थोड़ी-बहुत मात्रा में हमेशा ही बड़ी आँत में मौजूद रहते हैं। जिस समय शरीर में बहुत अधिक गंदगी इकट्ठी हो जाने के कारण बड़ी आँत दुर्बल हो जाती है और उसकी रोग-प्रतिरोध क्षमता कम पड़ जाती है, केवल उस समय ही आँव की शिकायत होती है। इसलिए बड़ी आँत के साथ ही साथ सारे शरीर को दोषमुक्त कर लेना ही इस रोग की वास्तविक चिकित्सा है।

रोग के लक्षण प्रकट होते ही बच्चे के पेट पर तीन बार गरम-ठंडा का प्रयोग करने के बाद, मामूली गरम पानी का एक डूस देना चाहिए। इसके बाद दो घंटे के लिए दो तीन बार पेट की लपेट का प्रयोग करना आँव ठीक कर लेने के लिए काफी है। बड़ी आँत में स्थित रोग के कीटाणु, कीटाणु-विष और रुका हुआ मल डूस के पानी के साथ ही साथ बाहर निकल आते हैं। इसलिए तुरन्त ही ऐसी व्यवस्था कर लेने से, कई, स्थितियों में तो, केवल एक डूस से ही रोगी ठीक हो जाता है।

फिर भी, आँव की शिकायत होते ही यह समझना चाहिए कि बच्चे का पेट-खराब हो गया है। इसलिए रोग पूरी तरह ठीक नहीं होने तक और ठीक हो जाने के बाद भी दो-तीन दिन तक उसके पेट पर दिन में दो बार गरम-ठंडा देकर दिन में दो बार दो घंटे के लिए पेट की लपेट देना आवश्यक है। इससे पेट की अवस्था सुधरती है और फिर से यह रोग हो सकना कठिन हो जाता है।

रोगी के बुखार की अलग से चिकित्सा करना आवश्यक नहीं है।

Fever is only symptom and is not unduly high or prolonged, not one which does harm—ज्वर केवल एक लक्षण ही है और यदि वह बहुत अधिक न हो या काफी समय से न आता हो, तो वह कोई अनिष्ट नहीं करता (J. P. Crczer Griffith, M.D., Ph D.—The Disease of Infants and Children, Vcl. I. p 239)। रोगी का सिर दिन में तीन बार धोकर सारा शरीर गीले गमछे से पोंछ देने से ही इस रोग के लिए जो करना चाहिए वह हो जाता है। इसके साथ ही शिशु को बिस्तर पर सुलाकर लगातार आराम करने देना उचित है।

रोगी के हाथ-पैर हमेशा गरम रखना आवश्यक है। उसे तौलिया स्नान कराने से पहले सुबह-शाम एक घंटे के लिए पैर की लपेट (foot-pack) देने से बहुत लाभ होता है।

रोग प्रकट होने पर बारह से चौबीस घंटों तक रोगी को नीबू का रस मिला पानी और ग्लूकोज मिले पानी के अतिरिक्त और कुछ भी खाने-पीने को देना ठीक नहीं। रोग जितना तीव्र हो उतने ही लम्बे समय के बाद रोगी को पथ्य देना चाहिए। किन्तु उसके उपरोक्त ढंग सें बार-बार पानी पिलाना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि इस समय बहुत-सा पानी शरीर से बाहर निकल जाता है और शरीर में पानी की इस कमी की यदि पूर्ति नहीं की गई, तो किसी भी समय विपत्ति आ सकती है।

रोग की तीव्रता के अनुसार बारह घंटे या चौबीस घंटे बाद रोगी को छेने का पानी, मट्ठा, या मौसम्बी का रस देना चाहिए। बुखार

उतर जाने के बाद बड़े बालक को अच्छी तरह पका हुआ केला मक्खन की तरह बनाकर देना उचित है। आँव में यह बहुत उत्तम पथ्य है। रोगी को मट्ठे के साथ सिंका बेल भी दिया जा सकता है। अन्न ग्रहण करने के बाद रोगी को शुरू-शुरू में पटल, नेनुआ, तरुई एवं नरम बैंगन उबालकर दिया जा सकता है।

दूध प्रारम्भ में ही बंद कर देना चाहिए। माता का दूध पीनेवाले बच्चों के लिए भी यही बात लागू होती है (Ibid., p. 754)। किन्तु एक या दो दिन के बाद, जब कि रोग की तीव्र अवस्था निकल जाए, तब फिर से उसे माता का दूध पीने देना ठीक है। किन्तु बड़े बच्चों को कुछ दिनों बाद दूध देना चाहिए। रोगी को काफी दिनों तक कोई भी चर्बी जातीय पदार्थ नहीं दिए जाएँ। सभी प्रकार की तली हुई चीजें, हलवाई के यहाँ की वस्तुएँ, बिस्कुट, लजेंस और शक्कर बन्द कर देना चाहिए।

एक बार आँव हो जाने पर, बच्चे को कई दिनों तक पूरी रात के लिए पेट की लपेट देनी चाहिए और पथ्य का ध्यान रखना आवश्यक है। क्योंकि यह रोग प्रायः ही बार-बार लौट आता है।

उलटी

[Vomiting]

उलटी प्रकृति की एक प्रकार की रक्षामूलक व्यवस्था है। जिस समय आवश्यकता से अधिक खाद्य पाकस्थली में पहुँच जाता है, उस

समय प्रकृति अतिरिक्त खाद्य उलटी कराकर बाहर निकाल देती है। इसलिए उलटी को जबर्दस्ती कभी भी बंद नहीं करना चाहिए। जब उलटी कुछ खाने के बाद होती है और खाए गए अन्न को ही बाहर ले आती है तथा यदा-कदा होती है, तब उसकी कोई चिन्ता करना ही ठीक नहीं है। शिशु को कुछ कम खाने को देते ही अथवा कुछ देरी से खाने को देने से ही वह अच्छा हो जाता है।

अतिसार और ज्वर आदि से खाए हुए अन्न का पाकस्थली में पाचन नहीं होता और वह विष बन जाता है। तब कुछ स्थितियों में प्रकृति पाकस्थली को खाली कर जीवन की रक्षा करती है। ऐसी अवस्था में उलटी बंद करना ठीक नहीं बल्कि उलटी हो जाए ऐसी ही व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए बच्चे को इस समय थोड़ा गरम पानी पिलाना आवश्यक है। उससे उलटी होकर पाकस्थली साफ हो जाती है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि थोड़े गरम पानी से उलटी होती है और ज्यादा गरम पानी से उलटी बंद होता है। जिस समय उलटी के साथ जलीय पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं निकले, केवल उसी समय उलटी बंद करना उचित है।

यदि बच्चे का पेट बहुत गरम हो, तो उसके पेट के ऊपर दस से बीस मिनट के लिए खूब ठंडे पानी में भिगोए गए कपड़े की भारी पट्टी का प्रयोग करने से ही उलटी बंद हो जाती है। किन्तु यदि रोगी का पेट ठंडा हो तो उसके पेट परे दो मिनट तक सेंक करने के बाद एक बार ठंडा देकर तीन बार गरम-ठंडा (alternate compress) देना चाहिए। उसके बाद उसे एक घंटे के लिए पेट की लपेट देना उचित है।

किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चे के पेट में कुछ भी नहीं रहता। वह जो भी खाता है, बाहर निकल जाता है और ऐसा कई दिनों तक चलता रहता है। ऐसी अवस्था में बच्चा खाने के बाद रोना शुरू करता है, पाकस्थली वायु से भर जाती है, उसका पेट दबाने से उसे दर्द मालूम होता है, शरीर विशेषतः हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं और बच्चा दिन पर दिन सूखता जाता है। इसे पुरानी उलटी (chronic vomiting) कहते हैं।

कभी-कभी बच्चे को दो से दस दिनों तक उलटी होती रहती है। ऐसे समय वह कुछ भी नहीं खाना चाहता। उसके बाद वह आप ही आप अच्छा हो जाता है और कुछ दिनों तक बहुत अच्छा रहता है। किन्तु उसके बाद फिर उलटी शुरू हो जाती है। इसे आवर्तमान उलटी (cycle vomiting) कहते हैं।

इस सारी स्थिति को केवल पाकस्थली का रोग बताना-समझना भ्रम है और केवल पाकस्थली की ही चिकित्सा करने से यह रोग कभी भी ठीक नहीं किया जा सकता। जिस समय शरीर में दूषित पदार्थों का संचय बहुत अधिक बढ़ जाता है और इस विष का पाकस्थली पर आक्रमण होता है तथा उसके परिणामस्वरूप पाकस्थली एक प्रकार की उत्तेजित अवस्था में रहती है, उस समय ही यह रोग होता है।

इसलिए ऐसी स्थिति में शरीर को दोषमुक्त करने के साथ ही साथ पाकस्थली पर ध्यान देने से ही उलटी अपने आप बंद हो जाती है।

अतएव शिशु को प्रारम्भ में ही एक-तिहाई नीबू के रस गुनगुने जल में मिलाकर एक डूस देना आवश्यक है और जब तक रोग पूरी

तरह ठीक नहीं हो जाए, तब तक प्रतिदिन एक बार डूस देना चाहिए। डूस देने से पहले, पेट पर गरम-ठंडे का तीन बार प्रयोग आवश्यक है।

इसके बाद बच्चे की चुचुक से तलपेट तक स्थान के चारों ओर पेट-पीठ घुमाकर एक लपेट दी ज़ाती है। उसके बाद शिशु जितना गरम पानी आसानी से सहन कर सके, उतने गरम पानी की एक थैली या चपटी बोतल पेट पर रखकर एक गरम शाल से गरम थैली सहित पाकस्थली और लपेट को ढक देना आवश्यक है। दस से पन्द्रह मिनट के बाद गरम थैली को खोल ली जाए और इस अवस्था में बच्चे को आधे घण्टे तक रखा जाए। इसके बाद शाल हटाकर और पेट की लपेट को वैसी ही रखकर उसे कुछ खाने के लिए देना चाहिए। सारे शरीर की चिकित्सा (constitutional treatment) के साथ ही यह चिकित्सा चलाने से कठिन से कठिन उलटी भी ठीक हो जाती है।

बच्चे का सिर दिन में दो बार धोकर दुपहर में उसे स्नान कराना चाहिए और तीसरे पहर गीले तौलिये से उसका सारा शरीर पोंछ देना आवश्यक है। स्नान या तौलिया-स्नान कराने के बाद, उसका सारा शरीर रगड़कर गरम कर लेना उचित है। यदि बच्चे का शरीर ठंडा हो तो स्नान से पहले थोड़े समय तक उसे धूपस्नान (Sun bath) कराना चाहिए और धूप में रहने पर शरीर गरम हो जाने पर शरीर गरम रहते रहते ही उसे स्नान कराना या उसका शरीर पोंछ देना आवश्यक है।

शिशु के पथ्य पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। बहुत अधिक उलटी होने पर, आरम्भ मे ही बच्चे का सारा खाना-पीना बंद कर देना उचित है। उपवास ही उलटी की प्रथम चिकित्सा है।

छोटे बच्चे को उपवास कराने में लोग बहुत डरते हैं। किन्तु इस स्थिति में उसे दो दिन उपवास करा देने से उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता, बल्कि काफी लाभ होता है (Sir Robert Hutchinson, M. D., F.R.C.P—Lectures on Diseases of Children, p. 71)। इस समय उसे थोड़ा-थोड़ा कर नीबू का रस मिला यथेष्ट पानी बार-बार पीने के लिए देना आवश्यक है या उसे कच्चे नारियल का पानी (डाभ) दिया जा सकता है।

उपवास के बाद उसे छेने का पानी या दही का पानी देना चाहिए। नई और पुरानी उलटी में छेने तथा दही के पानी की अपेक्षा मूल्यवान खाद्य कम ही हैं (Encyclopaedia Medica, Vol. 5, p. 260)। किन्तु उलटी में यदि खट्टी बू हो, तो मट्ठा देना कभी भी उचित नहीं है। इस अवस्था में खीरा का रस थोड़ा-थोड़ा करके और बार-बार देने से बहुत लाभ होता है। शिशु का सारा खाद्य ही शीतल होना चाहिए।

बच्चे को शुरू-शुरू में बहुत कम खिलाना उचित है। जिस समय पेट में कुछ भी न हो, उस समय एक बार में चाय की एक चम्मच के बराबर खाद्य देना चाहिए तथा उसमें धीरे-धीरे वृद्धि करना आवश्यक है। किन्तु उसे बार-बार खिलाना कभी भी उचित नहीं है।

दूध पर रहनेवाले बच्चों की माता के स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए। क्योंकि माता के अनियमित जीवन के परिणामस्वरूप उसका दूध खराब हो सकता है।

मलद्वार का बहिर्गमन

[Prolapse of the Anus]

कभी-कभी मलत्याग के बाद मलद्वार (anus) बाहर निकल आता है। इसे मलद्वार का बहिर्गमन कहते हैं। बाहर निकला हुआ मलद्वार देखने में गहरे लाल रंग का होता है। खराब अवस्था में कभी-कभी मलद्वार के साथ ही साथ सरलान्त्र (rectum) का भी कुछ भाग निकल आता है। यह रोग जीवन के दूसरे या तीसरे वर्ष में ही साधारणतः अधिक देखा जाता है। पाँच वर्ष के बाद यह शायद ही दिखाई देता है।

बहुत अधिक कोष्ठबद्धता होने पर साधारणतः यह रोग होता है। इस अवस्था में बार-बार जोर लगाकर मलत्याग करने से अंत में मलद्वार बाहर निकल आता है। किन्तु अधिकांश अवस्थाओं में पुराने अजीर्ण और आँव के कारण जब बच्चा कमजोर हो जाता है, तब ही मलद्वार बाहर निकल पड़ता है।

साधारणतः यह अपने आप ही भीतर चला जाता है अथवा थोड़ा दबाने से ही भीतर हो जाता है। किन्तु यदि यह किसी प्रकार भीतर नहीं जाए, तो तुरन्त ही उसकी व्यवस्था करना आवश्यक है। अन्यथा बहुत बड़ी हानि हो सकती है।

मलद्वार यदि सहज ही भीतर प्रवेश न करे, तो हाथ में थोड़ा-सा नारियल का तेल लगाकर पहले मलद्वार में उसे लगा देना चाहिए और उसके बाद तेल लगे हाथ से कुछ क्षणों तक स्थिर भाव से धीरे-

धीरे दबाना आवश्यक है। यह मलद्वार खिसकने लग जाए और दबाव अच्छी तरह न लगे तो तेल लगे एक नरम कपड़े से दबाना चाहिए। बाहर निकले हुए मलद्वार के बीच के भाग के छेद पर पहले दबाना चाहिए। शिशु को औंधा कर लेने से यह काम बहुत सरल हो जाता है। यदि उसे जाँघ पर बैठाकर उसका सिर जमीन पर रखा जाए और इस प्रकार (in the knee-chest position) शरीर को त्रिभुज के समान करने के बाद दबाया जाए, तो मलद्वार आसानी से भीतर चला जाता है। यदि वह सरलतापूर्वक भीतर न जाए, तो शिशु को सुलाकर उसके मलद्वार पर बहुत ठंडे पानी या बरफ के पानी की बड़ी पट्टी देनी चाहिए अथवा खूब ठंडे किन्तु बहुत थोड़े पानी में उसे दस मिनट के लिए कटिस्नान (हिप बाथ) करना उचित है। कटिस्नान का पानी तलपेट की आखिरी सीमा तक रहे तो भी काफी है। इससे जब स्थानीय रक्ताधिक्य और फुलाव चली जाती है तब मलद्वार अपने आप ही भीतर चला जाता है। यदि काफी समय तक मलद्वार बाहर रहे, तो संकोचक पेशी को उँगली से चौड़ी कर दूसरे व्यक्ति से दबवाना चाहिए। मलद्वार को भीतर प्रवेश कराने के समय बच्चे को एक करवट से सुलाना आवश्यक है।

रोग की तीव्र स्थिति में रोगी को चित या करवट के बल सुलाकर बेड पान (bed-pan) या कागज आदि पर ही हमेशा टट्टी कराना चाहिए। इस समय अन्य कोई व्यक्ति मलद्वार के दोनों ओर हाथ से दबाए रख सकता है।

मलद्वार भीतर चले जाने के बाद, शिशु को काफी समय तक पेट पर औंधा सुला रखना चाहिए।

किन्तु यह सब तात्कालिक (emergency) चिकित्सा ही है। केवल इतना ही करने से रोग कभी भी ठीक नहीं हो पाता। जिस कारण से रोग होता है, उसको दूर करना ही इसकी मुख्य चिकित्सा है। इसलिए कोष्ठबद्धता अथवा अजीर्ण, जिस किसी भी कारण से रोग हुआ हो, उसकी चिकित्सा करनी चाहिए (इन सभी रोगों की चिकित्सा देखिए)। इसके साथ ही साथ शरीर की स्थिति सुधार लेना आवश्यक है। इसके लिए सारे शरीर की मालिश, पेट पर गरम-ठण्डा, धूपस्नान के बाद स्नान तथा दिन में दो बार दो घंटे के लिए और सारी रात के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना चाहिए।

इस रोग में स्थानीय चिकित्सा भी उतनी ही आवश्यक है। प्रतिदिन रोगी के गुह्यद्वार में दो मिनट गरम सेंक के बाद दो मिनट ठंडा, इस प्रकार बारह मिनट तक गरम-ठंडा देना चाहिए। इसे सुबह और शाम दो बार देने की आवश्यकता होती है। जब गुदा भीतर में हो तभी ऐसा करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिन में दो बार आधे घण्टे के लिए गुह्यद्वार के ऊपर और चारों ओर काफी गीली मिट्टी की पुलटिस फ्लानेल से ढककर देना चाहिए। रात को भी पूरी रात के लिए गुह्यद्वार पर ढकी हुई पट्टी रखा जाए। इससे थोड़े समय में ही गुह्यद्वार का बाहर निकलना बंद हो जाता है।

यदि कोष्ठबद्धता हो तो कोष्ठबद्धता का पथ्य और यदि अजीर्ण हो, तो अजीर्ण का पथ्य देना चाहिए।

पुराना अजीर्ण

[Chronic Indigestion]

यह एक प्रकार का क्षय रोग है। बीच-बीच में पतले दस्त इस रोग का प्रधान लक्षण है। मल साधारणतः स्वाभाविक अवस्था से पतला ही होता है और दिन में दो बार से छः बार तक होता है। परिमाण में भी मल अधिक होता हैं। कभी-कभी मल में फेन होता है। प्रायः मल के साथ थोड़ी-बहुत आँव, अनपचा खाद्य और पीब बाहर निकलते हैं। मल प्रायः ही अत्यन्त वदबूदार होता है। कभी-कभी इस रोग में मलद्वार बाहर निकल आता है। बीच-बीच में उलटी होती है और बच्चा बहुत कमजोर हो जाता है। किसी-किसी समय तो इस अवस्था में खून की कमी हो जाती है और सूजन आ जाती है। उसका स्वभाव साधारणतः चिड़चिड़ा हो जाता है। वह हमेशा ही रोता है एवं प्रायः नींद नहीं आने के कारण उसे कष्ट होता है।

जिस कारणों से अजीर्ण होता है, उनमें आहार की गलती ही सवसे अधिक उत्तरदायी है। साधारणतः बहुत अधिक आहार, बार-बार आहार, अनियमित समय पर आहार, बहुत अधिक शक्कर या मीठी चीजों का सेवन, बिना चवाए खाना, मक्खन जैसे चर्बी जातीय पदार्थों का अत्यधिक सेवन, लंबे समय से बीमार माता का दूध, पीना कठिनता से पचनेवाले पदार्थ और बहुत अधिक मात्रा में बिस्कुट तथा तले पदार्थ खाने आदि कारणों से अजीर्ण होता है।

इन सभी कारणों से शरीर में एक प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है और उसके परिणामस्वरूप शरीर में बहुत अधिक विष और

दूषित पदार्थ का संचय हो जाता है। जिस समय यह विष पाचक-अंगों पर आक्रमण करता है और खून को दूषित कर पाचक-रस को शक्तिहीन कर देता है, उस समय पुराने अजीर्ण के लक्षण प्रकट होते हैं। अजीर्ण किन्हीं भी कारणों से न हो, पहले शरीर में कुछ विषों का संचार होता है, और उसके बाद अजीर्ण होता है। इसलिए अजीर्ण को केवल पेट का ही रोग कभी भी नहीं समझना चाहिए। वास्तव में यह सारे शरीर का रोग (constitutional disease) है, किन्तु यह पाचक-अंगों में विशेष रूप से प्रकट होता है। अतएव केवल पाचक-अंग की चिकिन्सा ही इसकी चिकित्सा नहीं है। सारे शरीर को सबल और दोषमुक्त कर लेने के साथ ही साथ पाचक-अंग का भी सुधार कर लेना इसकी प्रमुख चिकित्सा है।

इसलिए इस चिकित्सा में आरम्भ से ही ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि प्रतिदिन कुछ देर के लिए रोगी के पेट पर गरम-ठंडा (alternate compress) देने के बाद गुनगुने पानी का डूस, प्रतिदिन बीस-चौबीस मिनट के लिए सारे शरीर की तेल-मालिश, नहलाने से पहले कुछ समय तक धूप-स्नान तथा उसे दिन में दो बार एवं सारी रात के लिए पेट की लपेट दी जा सके। यह इस रोग की अव्यर्थ चिकित्सा है। इस चिकित्सा से सात दिनों में ही रोगी की स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है।

डूस देने से तुरन्त पहले रोगी के पेट पर प्रतिदिन गरम-ठंडा देना चाहिए। पहले दो मिनट तक गरम सेंक कर, तुरन्त ही पेट को ठंडा कर लेना उचित है तथा एक बार में ऐसा तीन बार करना चाहिए। उसके बाद सप्ताह में दो दिन डूस देने से काम चल सकता

है। यदि सर्दियों का समय हो, तो प्रतिदिन बच्चे को धूप में रखकर तेल-मालिश करना उचित है और धूप में रखने के बाद उसका शरीर गरम रहते-रहते उसे स्नान कराया जाए। स्नान के बाद भी हाथ से सारे शरीर को रगड़कर गरम कर लेना चाहिए। गर्मियों में बच्चे को केवल सुबह ही धूप में रखना उचित है।

किन्तु इस रोग में पथ्य और स्वास्थ्यनीति पर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है। बच्चे को बहुत धीरे-धीरे खिलाना चाहिए। बच्चा यदि बड़ा हो, तो हमेशा ही चबाकर खाने की उसकी आदत डालना जरूरी है। भोजन का एक निश्चित समय होना नितान्त आवश्यक है और निश्चित समय के बाद उसे कभी भी कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिए। सोकर उठने के तुरन्त बाद ही उसे कुछ भी खाने को देना ठीक नहीं है।

इस रोग में शक्कर, भात, रोटी और बिस्कुट जैसे शर्करा और श्वेतसार जातीय पदार्थ यथासंभव कम कर देना चाहिए। मक्खन, घी, अंडे का पीला भाग और मलाई जैसे चर्बी जातीय खाद्य बिलकुल ही बंद कर देना आवश्यक है। सभी प्रकार के तले हुए पदार्थ, बहुत अधिक मशाला, कठिनता से पचनेवाले सभी पदार्थ एवं चाय और काफी बिलकुल बंद कर देना चाहिए। यदि पतले दस्त आते हों, तो कुछ समय के लिए फल और फल का रस भी बंद कर दिया जाए। किन्तु बच्चे को यदि कोष्ठबद्धता हो, तो उसे कमला नीबू, मौसम्बी, टमाटर और अनन्नास की रस और सिका हुआ बेल देना आवश्यक है। इन सभी खाद्य पदार्थों को देकर पेट साफ रखने से उसे पतले दस्त प्रायः नहीं होते।

इस रोग में बड़े बच्चों के लिए अच्छा पका हुआ केला हमेशा ही बहुत अच्छा पथ्य है। यदि पतले दस्त आते हों, तो उस अवस्था का मुख्य पथ्य छेने तथा दही का पानी एवं ग्लूकोज पानी होना चाहिए। अन्य अवस्थाओं में भी छेने का पानी तथा मट्ठा बहुत अच्छा पथ्य है।

बच्चे को जल्दी ही मोटा-ताजा कर लेने के लिए उसे कभी भी अतिरिक्त भोजन नहीं कराना चाहिए। बहुत अधिक खिलाते से रोग प्रायः ही लौट आता है। कुछ दिनों तक शरीर की सफाई की चिकित्सा चलाने के बाद दुबले शिशु को सर्वदा ही शुद्ध माल्ट (pure malt extract) खाने को देना चाहिए। यह खिलाने से बच्चे का शरीर जल्दी ही सुधर जाता है।

पहली अवधि में ही बच्चे को बीच-बीच में जल देना चाहिए। किन्तु don't give water in meals—भोजन के समय पानी देना कभी भी ठीक नहीं है (George Frederick Still, M A., M.D, F.R.C.P.—Common Disorders and Diseases of Childhood, p. 2-3)।

अन्त्रवृद्धि या आँत उतरना

[Hernia]

पेट के रास्ते आँत के बाहर निकल आने का ही नाम अन्त्रवृद्धि या आँत उतरना है बच्चों की नाभि के रास्ते कभी-कभी आँत बाहर आकर चमड़ी के नीचे आ जाती है। नाभि के नीचे वह एक प्रकार सूजन के रूप में दिखाई देती है। कभी यह सूजन कम होती है, तो

कभी अधिक । इसे नाभिक्षेत्र की हार्निया (Umbilical Hernia) कहते हैं । चित सोने पर यह चली जाती है । हाथ से दबाने पर भी यह अन्दर चली जाती है । किन्तु रोने, खाँसने, हाँपने और मलत्याग के समय जोर लगाने से वह बाहर निकल आती है । इस रोग में कोई दर्द नहीं होता । जीवन के प्रथम कुछ महीनों में यह दिखाई देती है । जो बच्चे बहुत कमजोर होते हैं, जो कोष्ठबद्धता, अजीर्ण और पेट की वायु से पीड़ित रहते हैं तथा हमेशा रोते हैं, उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है ।

कभी-कभी आँत नीचे की थैली के भीतर उतर आती है । ऐसी स्थिति में यह स्थान फूल जाता है । नाभिक्षेत्र की हार्निया के समान इसमें भी अंत्र खाँसी आदि से बाहर हो जाती है और सोने के बाद चली जाती है ।

ये दोनों प्रकार की ही अन्त्रवृद्धि साधारणतः देखने में आती हैं । यह कोई कठिन रोग नहीं है और सौ में से पचास बच्चों का रोग अपने आप ही ठीक हो जाता है । इस प्रकार यह रोग दूर होने में साधारणतः एक वर्ष का समय लगता है किन्तु कभी-कभी तीन वर्ष तक समय लग जाता है । अतएव आपरेशन करना पड़े, तो भी तीन वर्ष तक ठहरना चाहिए (Wilfred Sheldon, M.D., F.R.C.P. —Diseases of Infancy and Childhood, p. 230) ।

किन्तु इसे अधिक समय तक कभी भी नहीं बढ़ते रहने देना चाहिए । इसे जितने ही अधिक दिनों तक बढ़ने दिया जाएगा, इसके अच्छे होने में उतना ही अधिक समय लगेगा । बच्चों की अन्त्रवृद्धि कभी भी घातक रोग नहीं होती । फिर भी पहली अवस्था में यदि

यह ठीक नहीं हुए, तो आगे चलकर यह अत्यन्त असुविधा, यहाँ तक कि विपत्ति का कारण हो सकती है।

अन्त्रवृद्धि साधारणतः पेट की मांस-पेशियों की दुर्बलता और वायु से होती है। अतः यह रोग होते ही ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि पेट सबल हो जाए और पेट की वायु चली जाए। इसके लिए बच्चे के पेट पर प्रतिदिन दो बार गरम-ठंडा देकर, दिन में दो बार एक से दो घंटे के लिए तथा सारी रात्रि के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना चाहिए। निकला हुआ अन्त्र को पेट के भीतर घुसा देने के बाद ही हमेशा लपेट का प्रयोग करना आवश्यक है। शिशु का पेट गरम होने अथवा ठण्डा होने पर गरम करके दिन में एक बार पन्द्रह मिनट से बीस मिनट के लिए पेट पर आधा इञ्च मोटी फ्लानेल से ढकी पट्टी देनी चाहिए। कई स्थितियों में तो पेट पर केवल गरम-ठंडा देकर मट्टी की ढकी पट्टी (प्रयोग विधि के अन्तिम लिए अध्याय देखिए) का प्रयोग करने से ही अन्त्रवृद्धि अपने आप ही समाप्त हो जाती है।

किन्तु यह बात हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है कि अन्त्रवृद्धि बाहर नहीं आने पाये। उसे यदि कुछ दिनों तक भीतर रखा जा सके, तो साधारणतः वह और अधिक बाहर नहीं निकलती। इसके लिए यथासंभव अधिक समय तक अन्त्रवृद्धि पर ढकी पट्टी बार-बार रखनी चाहिए। पट्टी जितने ही अधिक समय तक रखी जाएगी, अन्त्रवृद्धि उतनी ही जल्दी ठीक हो जाएगी।

कभी-कभी अन्त्रवृद्धि जाँघ के भीतर देखी जाती है। इसे जाँघ की अन्त्रवृद्धि (femoral hernia) कहते हैं। इसकी चिकित्सा भी यहाँ है। जाँघ के जोड़ के ऊपर जिस स्थान से अन्त्र बाहर होती

है, उस स्थान पर दिन में दो बार गरम-ठंडा देकर और अन्त्र और भीतर प्रवेश कराके बार-बार बदली जानेवाली फ्लानेल से ढकी जल-पट्टी का प्रयोग करना ही इसकी मुख्य चिकित्सा है। शिशु की आयु के अनुसार प्रतिदिन एक बार और पेट की गरमी के अनुसार दस से पन्द्रह मिनट के लिए तलपेट और उतरा हुआ अन्त्र पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना भी आवश्यक है। आयु जितनी ही अधिक होगी और पेट जितना ही अधिक गरम होगा, उतने ही अधिक समय तक मिट्टी की पट्टी रखनी होगी।

बाजार में जितने ट्रास (Trass) मिलते हैं, वे बच्चों के लिए साधारणतः उपयोगी नहीं होते। इसलिए ढकी पट्टी पर ही निर्भर करना चाहिए। ढकी पट्टी इस प्रकार देना आवश्यक है कि उससे ट्रास का काम चल जाए यानी अन्त्र बाहर नहीं आ पाए। इसलिए अन्त्रवृद्धि नीचे होने पर भी दिन में एक बार छिद्रस्थान पर बारह मिनट के लिए गरम-ठंडा देकर सारी रात के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना चाहिए।

बच्चा यदि कुछ बड़ा हो, तो उसे आसन तथा पेट के व्यायाम कराने चाहिए।

शिशु के पथ्य के प्रति ध्यान देना भी आवश्यक है। उसे साफ पाखाना हो, इसके प्रति सदा ही ध्यान देना चाहिए। इसके लिए यदि बचा बहुत छोटा हो, तो उसे कुछ चम्मच कमला नीबू आदि फलों का रस प्रतिदिन देना जरूरी है। उसे पानी के साथ शहद भी दी जा सकती है। बड़े बच्चों को फल और फल का रस यथेष्ट मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिए।

कृमि

[Worms]

पेट में केंचुआ जाति के जो कीड़े पड़ जाते हैं, उन्हें कृमि कहते हैं। कृमि अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें सूत-कृमि (thread worm) और गोल-कृमि (round worm) प्रमुख हैं।

सूत-कृमि सबसे अधिक दिखाई देते हैं। ये अधिकतर बच्चों को ही होते हैं। किन्तु बड़े लोगों को ये नहीं होते हों, ऐसी बात नहीं है। ये साधारणतः एक-चौथाई इञ्च लम्बे तथा देखने में सूत के किसी छोटे टुकड़े की तरह होते हैं। गुह्यद्वार (rectum) और बड़ी आँत (colon) के भीतर ही ये पाये जाते हैं। ये प्रायः ही गुह्यद्वार में असह्य खुजली उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी सूत-कृमि से अतिसार (डाइरिया), मलद्वार का बहिर्गमन, बड़ी और छोटी आँतों का सूजन, तलपेट में आँव पड़ना तथा लड़कियों को असमय में ही श्वेत प्रदर की शिकायत हो जाती है। नाक को खुजलाना और नींद के समय दाँत घिसना इसके सबसे प्रमुख लक्षण हैं।

गोल-कृमि भी बच्चे के भीतर साधारणतः देखे जाते हैं। किन्तु पाँच से दस वर्ष तक के बालक-बालिकाओं को ये अधिक होते हैं। देखने में ये बड़े केंचुए के समान गोल और धूसर रंग के होते हैं। ये स्थूलकाय और एक इञ्च के आठ भाग के एक भाग से चार भाग तक बड़े होते हैं और इनकी लम्बाई चार से बारह इञ्च तक होती है। पाँच से बीस तक कृमि एक समय में पेट में हो सकते हैं, किन्तु प्रायः दो तीन रहते हैं। ये छोटी आँत में पाये जाते है। कई बार तो ये पाकस्थली से होकर मुँह के रास्ते बाहर निकलते हैं।

यदि गोल कृमि पेट में अधिक जमा हो जाएँ, तो पेट में दर्द, अतिसार, चिड़चिड़ा स्वभाव, नींद नहीं आना और दाँत घिसना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

पेट के भीतर के कृमि मारनेवाली लाखों रुपयों की दवाइयाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। जिन औषधियों से कृमि मारे जाते हैं, उनसे शरीर को कोई नुकसान नहीं पहुँचता हो, ऐसी बात नहीं है। दवाइयों से एक बार कृमि मार दिये जाने के बाद फिर कृमि नहीं होंगे, इसका कोई भी निश्चय नहीं है। एक कृमि को यदि साफ चावल के बरतन में रख दिया जाए, तो वह कुछ ही देर बाद मर जायगा। इसका अर्थ यही है कि कृमियों को जीवित रहने के लिए एक दूषित, गंदी और मलपूर्ण स्थान की आवश्यकता होती है। जिस समय पेट में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उस समय कृमियों का सबसे अधिक जोर होता है। पेट की अवस्था जितनी खराब होगी, कृमियों का स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होगा।

इसलिए पेट को कृमि रहित करने का मुख्य उपाय पेट को ठीक कर लेना ही है। जब ऐसा कर लिया जाता है, तब सारे ही कृमि अपने आप ही अन्त में बाहर निकल जाते हैं (Sir Robert Hutchinson, M.D., F.R.C.P.—The Lectures on Diseases of Children, p, 191)।

कृमि बाहर निकालने के लिए शिशु को कुछ दिनों तक खट्टा फल खाने को देना आवश्यक है। उसे काफी टमाटर, अनन्नास, बिजोरा और खट्टा कमला नीबू आदि फल खाने के लिए देना उचित है। बिना शक्कर मिला दही भी यथेष्ट मात्रा में उसे दिया जा सकता है। चोकर

सहित आटे की बिना घी की रोटी भी उसे खिलानी चाहिए ।

साथ ही साथ रोगी के पेट पर प्रतिदिन गरम-ठंडा देकर दो चम्मच शहद मिले हुए पानी से एक बार डूस देना आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त दिन में दो बार डेढ़ घंटे के लिए तथा सारो रात के लिए उसे पेट की लपेट देनी चाहिए।

कृमि इन खाद्यों को सहन नहीं कर पाते हैं, इसलिए नीचे चले आते हैं। पेट की लपेट रुके हुए मल और कृमियों को नीचे उतर आने में सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त पेट की लपेट से यकृत (लिवर) से ऐसा पित्त निकलता है कि उसमें कृमि रह नहीं सकते हैं। उसके बाद जब शहद मिले जल का डूस दिया जाता है, तब शहद खाने के लिए वे बड़ी आँत में आ जाते हैं और डूस के जल के साथ शरीर से धीरे-धीरे बिदा हो जाते हैं।

इस पथ्य, पेट की लपेट और डूस से पेट भी साफ हो जाता है और जहाँ तक कृमियों का प्रश्न है, पेट उनके रहने के अयोग्य हो जाता है।

यदि कृमि पेट में अधिक दिनों तक रहें, तो यह समझना चाहिए कि शिशु का स्वास्थ्य ही ठीक नहीं है। यदि ऐसा हो, तो कुछ दिनों तक ऊपर बताई गई चिकित्सा के साथ ही साथ स्नान से पहले उसे धूप-स्नान कराना चाहिए और प्रतिदिन नीबू के पानी के साथ काफी पानी पीने के लिए देना आवश्यक है। कुछ समय बाद उसे सप्ताह में दो दिन डूस देना ही काफी हो सकता है और ऊपर बताए गए पथ्य के साथ उबाली तरकारी दी जाए, किन्तु यह चिकित्सा डेढ़ माह चलानी चाहिए। काफी समय तक रोगी को बीच-बीच में पेट की लपेट देना जरूरी है।

सात

यकृत के रोग

यकृत का प्रदाह

[Inflammation of the liver]

यकृत शरीर का एक अत्यावश्यकीय यन्त्र है। यह शरीर के अन्दर विभिन्न प्रयोजनीय कार्यों को करता है। यह शरीर का रक्त साफ कर खाद्य के दोषों को नष्ट करता है, शरीर स्थित दूषित पदार्थों को पित्त के रूप में बाहर कर पित्त को ही परिपाक कार्य में नियुक्त करता है, एवं असमय के लिए अपने शरीर में खाद्य संचित रख और भी अनेक आवश्यकीय कार्य साधन करता है। यकृत यदि केवल २४ घंटे के लिए अपना कार्य बन्द कर दे, तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

इसीलिए यकृत के ऊपर सर्वदा सतर्क दृष्टि रखना उचित है, एवं जब कभी उसका कोई रोग उपस्थित हो, तो उसी समय उसकी समुचित व्यवस्था करना कर्तव्य है।

साधारणतः यकृत के जो सभी रोग होते हैं, उनमें यकृत का प्रदाह अन्यतम है। ऐसी अवस्था में रोगी को बुखार-सा मालूम देता है, दाहिनी पंसुली के नीचे दबाव देने पर दर्द, कभी-कभी दर्द का अनुभव, एवं दाहिने कन्धे तक दर्द का बढ़ना, परिपाक-यन्त्र की विशृङ्खला, लेपावृत जिह्वा, अग्निमन्द एवं कब्जियत आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

इस रोग में प्रायः कभी मृत्यु नहीं होती। किन्तु अधिकांश अवस्था में यह रोग बार-बार वापस आता है तथा अन्त में यह पुराने व्याधि में परिणत हो जाता है।

प्रधानतः खाद्य की त्रुटि के कारण ही यह रोग होता है। जिन सभी शिशुओं को अत्यधिक मात्रा में अथवा बार-बार खिलाया जाता है, आहार के लिए अत्यन्त गुरुपाक द्रव्य दिया जाता है, विशेषतः अधिक परिमाण में चीनी एवं चर्बी जातीय वस्तुएँ खिलाई जाती हैं, साधारणतः उन्हें ही यह रोग होता है। अनियमित रूप से खाद्य देने के फलस्वरूप परिपाक-यन्त्र के भीतर एक विश्रृङ्खला उत्पन्न होती है एवं वही रक्तस्रोत को दूषित कर इस रोग को जन्म देती है। अन्यान्य अवस्थाओं में भी रक्तस्रोत दूषित होने पर यह रोग हो सकता है। इसीलिए अधिकांश अवस्थाओं में मलेरिया अथवा आमाशय से यह रोग उत्पन्न होता है। इन सभी रोगों में रक्त के भीतर जो विष संचारित होता है, उसके द्वारा यकृत आक्रान्त होते ही यह रोग उत्पन्न होता है। इसीलिए शरीर को विषमुक्त करने के साथ साथ यकृत की ओर ध्यान देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

इस रोग के लक्षण प्रकाश में आते ही रोगी को आधे नीबू के रस के साथ थोड़ा गरम जल के द्वारा डूस देकर रोगी के पेट को परिष्कार कर लेना उचित है एवं रोग के न सुधरने तक पेट को इसी प्रकार परिष्कार रखना आवश्यक है।

तदुपरान्त यकृत के ऊपर दिन में एक बार गरम सेंक के बाद दो मिनट ठंडा देकर तथा एक साथ इसी प्रकार तीन बार करके बारंबार पेट, पीठ घुमाकर पेट की ढकी हुई लपेट देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

गरम-ठंडा हमेशा ही गरम से आरम्भ कर ठंडे में शेष करना उचित है। रोगी को ज्वर रहने पर हर बार आधे घंटे के लिए पट्टी देकर पुनः-पुनः परिवर्तन कर प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग एक घंटे के लिए अथवा जब तक पट्टी न सूख जाय तब तक के लिए करना जरूरी है।

ज्वर रहने पर ज्वर के अनुसार चिकित्सा करना आवश्यक है। इसके लिए ज्वर-चिकित्सा देखिए।

रोग पुराना हो जाने पर शिशु को स्नान के पहले, कुछ देर तक धूप में रखकर उसके बाद शरीर गरम रहते-रहते ही उसे स्नान करा देना जरूरी है। तदुपरान्त उसका शरीर घर्षण के द्वारा गरम कर लेना चाहिए।

शिशु के पथ्य के ऊपर विशेष रूप से ध्यान देना जरूरी है। रोग की उत्कट अवस्था में उसे यथासंभव कम खाद्य एवं जहाँ तक हो सके सहज ही में पच जानेवाले खाद्य देना आवश्यक है। इसके लिए उसे विभिन्न फलों का रस, उबाली हुई तरकारी का यूष, उबाली हुई तरकारी, १२ घंटे तक भींगा हुआ किशमिश का जल, विभिन्न हलके फल, जैसे कमला, मौसम्बी, पपीता, मक्खन निकाला दूध, शहद के साथ एवं मक्खन निकाला मट्ठा देना चाहिए।

यकृत की वृद्धि

[Enlargement of the liver]

बच्चों का यकृत वयस्कों के अनुपात में थोड़ा बड़ा ही होता है। वयस्कों का यकृत उनके सारे शरीर के वजन का प्रायः ४० भाग का

एक भाग होता है। किन्तु शिशुओं का यकृत उनके शरीर के वजन का प्रायः १८ हिस्से का एक हिस्सा होता है। साधारण अवस्था में यह दक्षिण भाग की पँसुली की हड्डी को थोड़ा-सा पार करता है। किन्तु बीमारी की हालत में यह कभी-कभी बहुत बड़ा हो जाता है तथा किसी-किसी समय सारे पेट को घेर लेता है एवं आकार में स्वाभाविक लिवर की अपेक्षा कई गुना बढ़ जाता है।

लिवर या यकृत का बढ़ना कोई रोग नहीं है। यह शरीर का तथा अनेक समय यकृत की रुग्णावस्था का एक लक्षण मात्र है। मलेरिया, यकृत का प्रदाह, एवं जलोदर के साथ यह साधारण-तया वर्तमान रहता है।

यकृत को सुधारने के लिए उसके ऊपर गरम-ठंडा प्रयोग करने के बराबर और कुछ नहीं है। पुराने मलेरिया में वृद्धिप्राप्त यकृत लेकर लोग जीवन बिताते हैं। किन्तु मलेरिया आदि रोगों में केवल सात दिन यकृत या लिवर के ऊपर गरम-ठंडा देने पर यकृत अपने स्वाभाविक आकार पर आ जाता है। यहाँ तक कि जलोदर रोग में लिवर के ऊपर गरम-ठंडा देने पर वह छोटा हो जाता है।

बच्चा छोटा होने पर दो-एक मिनट के लिए लिवर के ऊपर सेंक देना चाहिए एवं उसके बाद उस समय के लिए ठंडे जल में भींगे हुए गमछे द्वारा वह स्थान ठंडा कर लेना चाहिए। इस प्रकार एक समय में तीन बार एवं दिन में दो बार १२ मिनट के लिए करना आवश्यक है। ज्वर रहने पर गरम-ठंडा, ठंडे से आरम्भ कर गरम में शेष करना उचित है एवं ज्वर न रहने पर गरम से आरम्भ कर ठंडे में शेष करना चाहिए।

इसके अलावा रोगी को पुनः-पुनः एक घंटे के अन्तर से परिवर्तन कर दिन में तीन-चार बार पेट की लपेट देना आवश्यक है। जब ज्वर सर्व निम्नावस्था में हो अथवा ज्वर न हो, तभी पट्टी देना उचित है।

इसके साथ-साथ हमेशा ही शरीर को दोषमुक्त करने के लिए चेष्टा करना जरूरी है। कारण शरीर का कोई भी रोग हो, शरीर के अन्दर विभिन्न दूषित पदार्थों के संचय के अलावा कभी भी वह नहीं हो सकता।

कमला

[Jaundice]

यकृत के भीतर जो पित्तरस उत्पन्न होता है, वह पित्तनली के द्वारा छोटी आँत में आ जाता है। जब किसी कारणवश पित्तनली अवरुद्ध हो जाती है, तब पित्तरस छोटी आँत में न जाकर रक्त के साथ मिल जाता है और तभी यह रोग पैदा होता है।

इस रोग में आँखें, शरीर का चर्म, मूत्र एवं पसीना आदि पीले रंग के हो जाते हैं एवं रोगी को सब कुछ पीला नजर आता है। कदम्ब की तरह रक्त अथवा श्वेतवर्ण मल, पेट की विभिन्न शिकायतें, कब्जियत अथवा डाइरिया, अनिद्रा एवं अवसन्नता आदि इस रोग के साधारण लक्षण हैं।

पित्तरस यद्यपि आँत के भीतर जाकर परिपाक कार्य को विशेष

रूप से सहायता करता है, तथापि यह एक स्वाभाविक विष है। यह विष जब रक्त के भीतर जाकर गिरता है, तब विषक्रिया के कारण, सारा शरीर ही विषाक्त हो उठता है, एवं उसके फलस्वरूप शरीर में विभिन्न रोगों के लक्षण उत्पन्न होते हैं। साधारणतः ठंड लगना अथवा दुष्पाच्य पदार्थों का आहार आदि कारणों से शिशुओं को यह रोग होता है। किन्तु जब पहले से ही शरीर खराब हो अर्थात् शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का संचय हो, तभी यह रोग होना संभव है। इसीलिए मलेरिया एवं टायफायड आदि रोगों में जब रक्तस्रोत विषाक्त हो उठता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है। इसलिए अत्यधिक क्विनाइन सेवन करने के कारण कभी-कभी यह रोग होता है।

अतः शरीर को रोगमुक्त करने के साथ-साथ लिवर ठीक करने की चेष्टा ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

इसलिए सर्वप्रथम नीबू के रस के साथ गुनगुने जल द्वारा रोगी के पेट को परिष्कार कर देना उचित है एवं रोग सुधरने तक प्रतिदिन इसी प्रकार डूस देना चाहिए। तदुपरांत शिशु के लिवर के ऊपर दो से लेकर तीन मिनट तक सेंक के पश्चात्, उस समय के लिए ठंडा देकर एवं एक साथ इसी प्रकार तीन बार करके उसके पेट और पीठ पर पुनः-पुनः पेट की लपेट देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। लिवर के ऊपर गरम-ठंडा दिन में दो बार देना उचित है।

बच्चे को तीन-चार दिन के अंतर ४५ से ६० मिनट के लिए एक बार मध्य शरीर की लपेट (trunk pack) प्रयोग करना उचित है। यह भी चद्दर के पैक के बराबर ही है। केवल इसमें हाथ और

पाँव बाहर रहते हैं। रक्त के भीतर से पित्त बाहर कर देने में एवं खाज दूर कर देने में यह विशेष रूप से सहायता करता है। बच्चे के शरीर में पैक देने के समय हमेशा ही पतला कपड़ा व्यवहार करना उचित है।

बच्चे को प्रतिदिन नीबू के रस के साथ प्रचुर मात्रा में जल-पान करने देना उचित है। साधारण कमला कई बार केवल इससे ठीक हो जाता है। हर घंटे उसे पानी पीने देना चाहिए एवं जल के साथ बच्चा जिसमें रोज एक से दो नीबू का रस ग्रहण कर सके, इसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है।

रोगी का पथ्य विशेषरूप से सहजपाच्य होना जरूरी है। ज्वर रहने पर उसे केवल ज्वर का पथ्य देना उचित है। इनके लिए ज्वर-चिकित्सा देखिए। इसके बाद उसे कमला नींबू व बिजौरा आदि का रस, सेव एवं नाशपाती आदि फल, कच्चे नारियल (डाभ) का जल, छेने का पानी तथा मक्खन निकाला मट्ठा व दूध इत्यादि देना चाहिए। रोग सुधरने के बाद भी कुछ दिनों तक घी, मक्खन व तेल इत्यादि सभी चर्बी जातीय खाद्य, भुने हुए पदार्थ, गरम मसाले, मिर्च, अधिक मसाला मिला हुआ खाद्य एवं मिष्टान्न आदि दुष्पाच्य देना ठीक नहीं।

शिशु का यकृत-रोग

[Infantile Liver]

बच्चों का यकृत-रोग साधारणतः एक वर्ष से कम एवं तीन वर्ष की आयु तक के बच्चों को हुआ करता। कभी-कभ एक वर्ष से कम

आयु के शिशु को दाँत उठने के समय यह होता है। यदा-कदा शिशु-जन्म के कुछ दिन बाद ही यह रोग प्रकाश में आता है। पुनः छः वर्ष की आयु तक के बच्चों के अन्दर भी कभी-कभी यह रोग पाया जाता है।

भारत में यह रोग साधारणतः पश्चिम बंगाल, मद्रास, बम्बई एवं उत्तर प्रदेश में अधिक होता है।

हम जिसे शिशु-यकृत कहते हैं, विज्ञान की भाषा में उसका नाम हैं लिवर का सिरोसिस (infantile cirrhois of the liver)।

इस रोग से लिवर कड़ा हो जाता है। यह कभी-कभी बड़ा होकर समस्त पेट में फैल जाता है। पुनः कभी-कभी यह संकुचित होकर छोटा हो जाता है। इस रोग से लिवर के कोष एक प्रकार के तन्तुमय कोषों में रूपान्तरित होते हैं और इसके साथ ही साथ लिवर में शुष्कता (atrophes) परिलक्षित होती है।

पेट का फूलना, ज्वर, पेट की गड़बड़ी एवं खाँसी ही इस रोग के प्रधान लक्षण हैं। प्रायः ९० प्रतिशत मामलें में लिवर बड़ा हो जाता है। इसके साथ ही प्लीहा भी कुछ बढ़ जाता है। कभी-कभी आँखों में पीलापन भी आ जाता है एवं इस रोग के आरम्भ होने के प्रायः पाँच माह बाद अधिकांश तौर पर बच्चों में जलोदर के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही साथ जल से रोगी के हाथ-पैर एवं मुंह भारी हो जाता है तथा वह अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। और; पेट जितना ही बड़ा होता जाता है, शरीर उतना ही सूखता जाता है। मूत्र का परिमाण भी अत्यन्त कम हो जाता है और वह अत्यन्त गाढ़ा तथा लाल रंग का हो जाता है। इसके साथ ही शिशु के शरीर में रक्त

की कमी हो जाती है और कभी-कभी रक्तमय भी होता है।

एलोपैथी में अभी तक इस रोग के कारण का पता नहीं लग सका है। किन्तु आम तौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि माता एवं शिशु के भोजन के साथ इस रोग का विशेष सम्बन्ध है। सम्पन्न परिवारों में जहाँ बच्चों को अधिक खिलाया-पिलाया जाता है, यह रोग अधिक होता है। अत्यधिक एवं बार-बार भोजन करना, अस्वस्थ माता अथवा रुग्णा गाय का दूध पीना, अपाच्य चीजें खाना एवं अनियमित भोजन ही इस रोग के प्रधान कारण हैं। भोजन में गड़बड़ी के बिना यह रोग कभी हो ही नहीं सकता।

तथापि भोजन की गड़बड़ी निमित्त मात्र है। अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर में दूषित एवं विषाक्त पदार्थों का संचय ही शिशु-यकृत-रोग का प्रधान कारण है।

हमारे शरीर में लिवर एक अति उपयोगी यन्त्र है। शरीर का रक्त शुद्ध करना इसका एक प्रधान कार्य है। किन्तु भोजन की गड़बड़ी से जब शरीर में इतना विष उत्पन्न होता है कि लिवर उसे नष्ट करने में समर्थ नहीं होता एवं अन्त में इस विष द्वारा स्वयं ही आक्रान्त हो जाता है, तब उसमें नाना तरह के रोगों के लक्षण प्रकाश में आते हैं। कभी-कभी ऐसी अवस्था में लिवर में सूजन (inflammation) पैदा होती है और उसके बाद भी शरीर की अवस्था दोषयुक्त होने से कभी-कभी लिवर के कोष क्रमशः खराब हो जाते हैं और लिवर में सिरोसिस उत्पन्न होता है। जिस विष के आक्रमण से लिवर खराब हो जाता है, वह साधारणतः आँत और आमाशय से आता है।

इसीलिए शरीर को दोषमुक्त करने के साथ ही लिवर को स्वस्थ करना ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है।

शरीर में यकृत एक आश्चर्य जनक यन्त्र है। जब यह कीटाणु अथवा विष के आक्रमण से अधिकांश रूप में नष्ट हो जाता है, तो उस अवस्था में भी वह भीतर से स्वयं को पुनः स्वस्थ कर सकता है।

इसलिए इस रोग की चिकित्सा जितनी शीघ्र आरम्भ होगी, उतनी ही शीघ्रता से रोगी के आरोग्य होने की सम्भावना है।

प्रकृति हमारे शरीर में उत्पन्न विष को, मल, मूत्र एवं स्वेद के जरिये बाहर निकालकर हमलोगों को नीरोग रखती है। रोगाक्रान्त होने पर भी प्रकृति प्रदत्त इन मार्गों द्वारा विष एवं दूषित पदार्थों को बाहर निकालकर शरीर को पुनः स्वस्थ बनाया जा सकता है।

अतः सर्वप्रथम आवश्यकता होती है रोगी के पेट को स्वस्थ करने की।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिदिन रोगी के पेट पर एक मिनट गरम सेंक देने के बाद एक मिनट ठंडा देकर और साथ ही इस भाँति तीन बार करने के पश्चात् आध पाव से लेकर एक पाव जल से डूस देना चाहिए। डूस का जल गुनगुना होना चाहिए और उसके साथ थोड़ा नीबू का रस मिला देना उचित है। इस प्रकार अल्प जल के डूस से शिशुओं को कोई हानि नहीं होती, इसके विपरीत पेट साफ हो जाने के कारण रोगी की हालत अच्छी होती है।

इसके अतिरिक्त रोगी के पेट पर एक भींगी पट्टी बाँधना चाहिए, जिसे बार-बार बदलना आवश्यक है। खूब निचोड़े हुए एक गीले कपड़े को रोगी के पेट एवं पीठ पर दो-तीन बार लपेट कर फ्लानेल के

कपड़े से अच्छी तरह ढक देना चाहिए। साधारणतः ४५ से ६० मिनट के अन्तर से कम से कम दो-तीन घंटे तक ऐसा करना चाहिए। जब रोगी को बुखार न हो, तभी इस पट्टी का प्रयोग करना आवश्यक है।

यदि रोगी सदैव ज्वर में पड़ा रहे, तब उसके पेड़ू पर एक भींगा गमछा रखकर उसे एक सूखे तौलिए से ढक देना चाहिए और गरम होते ही उसे बदल देना आवश्यक है। इस भाँति प्रति बार २० मिनट तक के लिए दिन में तीन-चार बार ऐसा किया जा सकता है। ज्वराक्रान्त रोगी का ज्वर कम हो जाने पर उसके पेट पर पट्टी देनी चाहिए।

चिकित्सा के तीसरे अथवा चौथे दिन से रोगी के लिवर के ऊपर भी गरम-ठंडा सेंक देना आवश्यक है। इससे कभी-कभी सात दिन के अन्दर ही लिवर छोटा हो जाता है।

इसके बाद प्लीहा के ऊपर भी गरम-ठंडा सेंक देना उचित है। इस रोग में लिवर के साथ ही प्लीहा भी प्रायः बढ़ जाता है। इस प्रणाली से प्लीहा भी छोटा किया जा सकता है।

किन्तु शिशु की चिकित्सा अति शीघ्र नहीं करनी चाहिए और एक ही साथ कई प्रकार का इलाज नहीं करना चाहिए।

रोगी का सिर दिन में तीन बार अच्छी तरह धोकर उसके समस्त शरीर को एक गीले कपड़े से पोंछ देना जरूरी है। प्रातः सोकर उठने पर, दोपहर में तथा रात्रि में सोने से पूर्व अवश्य ही ऐसा करना चाहिए। जाड़े का मौसम में शरीर को गले तक कम्बल से ढककर गुनगुने जल से उसे पोंछ देना उचित है।

दिन में एक बार ऐसा करने के पूर्व १५-२० मिनट तक रोगी की देह में मालिश करनी चाहिए।

यदि ज्वर न हो, तो रोगी को प्रतिदिन एक बार कुछ समय के लिए धूप-सेवन करना अच्छा होता है। ऐसा करने के पूर्व सिर अवश्य ही धो लेना चाहिए और उस समय सिर को छाया में रखना आवश्यक है।

यदि रोगी के पेट अथवा हाथ-पैर में जल हो जाय, तो उसके मूत्र में वृद्धि करना ही रोग की प्रधान चिकित्सा है। इसके लिए निर्दिष्ट चिकित्सा के साथ ही साथ रोगी के दोनों भुजाओं की केहुनियों के ऊपर गरम-ठंडा सेंक देना चाहिए। किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मेरुदण्ड पर गरमी न लगे। इसलिए गरम-ठंडा सेंक देने के समय दोनों मूत्रयन्त्रों के मध्य मेरुदण्ड पर एक गीला तौलिया रखना चाहिए। यहाँ यह स्मरणीय है कि किडनी (मूत्रयन्त्र) पीठ की दोनों ओर जहाँ पसली की हड्डियाँ समाप्त होती हैं, उस स्थान पर मेरुदण्ड के दोनों ओर अवस्थित है।

गरम-ठंडा सेंक देने के समय यदि रोगी को बुखार हो, तो हर हालत में रोगी के शरीर पर पहले ठंडा देकर, तब गरम सेंक देना जरूरी है। और सेंक के समय ज्यादा आँच नहीं रहनी चाहिए।

रोगी के शरीर को सेंकने के पूर्व उसका सिर धो लेना चाहिए और यह आवश्यक है कि रोगी का सिर सदैव ठंडा रहे। साथ ही यह भी ध्यान में रहे कि हाथ-पैर गरम रखा जाय।

अधिकांश अवस्था में यह रोग रुग्ण माता का दूध पीने के परिणाम-स्वरूप होता है। अतः रोग प्रारम्भ होने के साथ ही साथ माता का

दूध बन्द कर, यदि सम्भव हो, तो शिशु को दूध पिलाने के लिए एक नवप्रसूता दाई की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि यह सम्भव न हो, तो शिशु को जल-मिश्रित बकरी का दूध देना श्रेयस्कर है। यदि शिशु को घर की गाय का दूध दिया जाता हो, तो उसे बन्द कर किसी अन्य गाय के दूध का प्रबन्ध करना चाहिए। किन्तु दूध हर हालत में मक्खन रहित होना आवश्यक है। सर्दी-जुकाम न होने पर शिशु को लाजा मट्ठा (छाछ) भी दिया जा सकता है, किन्तु उसमें से भी मक्खन निकाल लेना चाहिए। दूध और मट्ठा के अतिरिक्त नारंगी एवं मौसम्बी आदि फलों का रस देना चाहिए। इसे मधु के साथ मिलाकर दिया जा सकता है। यदि शिशु अपेक्षाकृत बड़ा हो, तो पपीता, सेव, टमाटर आदि फल, उबाली हुई तरकारी तथा तरकारी का यूष देना उचित है। रक्त की कमी होने पर हमेशा ही पालक-साग का कच्चा रस देना चाहिए। यथासम्भव शिशु को कच्चा खाद्य देना श्रेयस्कर है।

प्रतिदिन घड़ी देखकर ठीक समय पर पथ्य देना चाहिए। प्रारंभ से पथ्य में नमक की मात्रा खूब कम कर देना उचित है। और जलोदर की अवस्था में नमक एकदम बन्द कर देना चाहिए।

नीरोग हो जाने के बाद भी शिशु को काफी दिनों तक उसे तला हुआ पदार्थ, अधिक मसालेदार तरकारी, दूकान की चीजें, चाय, अधिक मात्रा में घी अथवा तेल देना उचित नहीं।

यह रोग अधिकांश अवस्थाओं में एक ही माँ की सन्तानों के मध्य बार-बार पाया जाता है। इसलिए किसी शिशु के इस रोग से आक्रांत होते ही उसकी माँ का अविलम्ब ऐसा इलाज होना चाहिए, जिससे उसका शरीर दोषमुक्त हो जाय। और पुनः सन्तान होने के बाद

तब तक स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, जब तक की शिशु बड़ा न हो जाय। नवप्रसूता माँ को अधिक फल, सलाद (कच्ची तरकारी), धारोष्ण दूध, दही, चोकर मिश्रित आटे की रोटी, ओखल में छाँटे हुए चावल के मांड सहित भात एवं उबाली हुई तरकारी देनी चाहिए।

आठ

पुष्टि-संबंधी रोग

सूखा रोग

[Rickets]

सूखा रोग एक प्रकार का शिशुरोग है। इस रोग में हड्डियाँ नरम और टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं और अजीर्ण के विभिन्न लक्षण प्रकट होते हैं। छः मास से दो वर्ष के भीतर तक के बच्चों को यह रोग अधिक होता है। तीन मास की आयु से पहले और तीन साल की आयु के बाद यह शायद ही होता है।

यह रोग प्रकट होने से पहले पेट की विभिन्न गड़बड़ियाँ होती हैं। बच्चे की भूख कम हो जाती है। उलटी और अतिसार प्रायः होते

ही रहते हैं। मल अस्वास्थ्यकर और देखने में मिट्टी के रंग जैसा होता है। बच्चे का वजन बढ़ना बन्द हो जाता है अथवा कम हो जाता है। इस रोग का एक प्रमुख लक्षण है सिर और शरीर के ऊपरी भाग में पसीना आना। साधारणतः नींद के समय यह पसीना अधिक आता है। कभी-कभी बच्चे को ब्रंकाइटिस और मरोड़ (convulsions) के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसके साथ ही साथ उसकी हड्डियों में दर्द प्रारंभ हो जाता है। उसे हिलाने-डुलाने पर ही वह रोने लगता है। यह देखा गया है कि उपयुक्त समय हो जाने पर भी बच्चा बैठा या खड़ा नहीं हो पाता। धीरे-धीरे हड्डियों का आकार बदलना प्रारंभ होता है। हाथ की कलाई, पैर की हड्डी और मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) टेढ़ हो जाते हैं या छाती की हड्डी ऊँची उठ जाती है। सिर कई स्थितियों में तो बड़ा हो जाता है और चेहरा छोटा दिखाई देता है। ऐसे शिशु के दाँत काफी देर से निकलते हैं और शीघ्र ही गिर जाते हैं। पेड़ू की हड्डी पर भी प्रभाव पड़ने के परिणामस्वरूप लड़कियों को आगे चल कर सन्तान-प्रसव के समय बड़ी असुविधा होती है।

इस रोग में साधारणतः मृत्यु नहीं होती। किन्तु रोगी अपेक्षाकृत छोटा हो जाता है और बाद में उसकी हड्डियाँ सख्त पड़ जाने पर वह न्यूनाधिक रूप में विकृत शरीर हो जाता है।

जिन बच्चों के भोजन में कोई शृङ्खला नहीं होती, जिन्हें चावल-रोटी जैसे श्वेतसारजातीय खाद्य बहुत अधिक दिए जाते हैं और जिन्हें सूर्य की प्राणदायक किरणों का लाभ नहीं मिलता तथा जो बच्चे हमेशा ही अस्वास्थ्यकर और भीड़-भाड़वाले स्थानों में या बन्द घरों

में रहते हैं एवं जिन्हें माता का दूध यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलता, साधारणतः उन्हें ही यह रोग होता है। गाँवों की अपेक्षा शहरों में ही यह रोग अधिक: देखने में आता है।

यह रोग अचानक एक ही दिन प्रकट नहीं हो जाता। काफी दिनों तक असावधानी बरतने के परिणामस्वरूप जब शरीर में अत्यधिक विष और दूषित पदार्थ इकट्ठा हो जाते हैं और पाचक-अंगों तथा हड्डियों पर जब उनका असर होता है, केवल तब ही यह रोग होता है। इस रोग में ब्रंकाइटिस, मरोड़ (convulsions) और खून की कमी जैसे जो लक्षण प्रकट होते हैं, वे भी शरीर की इस दोषपूर्ण अवस्था के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

कई स्थितियों में तो खाद्य में यथेष्ट मात्रा में चूना, गंधक (फासफोरस) और विटामिम-डी नहीं होने से यह रोग होता है। इसलिए इसे खाद्य में कमी की बीमारी (deficiency disease) कही जाती है। किन्तु भोजन में ये सब चीजें होने पर भी कभी-कभी सूखा रोग होता है। शरीर की दोषपूर्ण अवस्था के कारण जिस समय ये सब खाद्य शरीर में यथेष्ट मात्रा में गृहीत नहीं होते, उस समय यह रोग प्रकट होता है।

इसलिए आरंभ से ही शरीर को सभी प्रकार से दोषमुक्त और सुगठित कर लेने की व्यवस्था करना आवश्यक है। पेट पर प्रतिदिन गरम-ठंडा, काड-लिवर आइल के साथ प्रतिदिन धूप में मालिश, ठंडे पानी से स्नान, स्नान के बाद सूखी मालिश, दिन में दो बार और सारी रात के लिए पेट की लपेट के प्रयोग से यह उद्देश्य विशेष रूप से पूर्ण होता है। इस सारी व्यवस्था से जहाँ बच्चे का शरीर दोषमुक्त

होता है, वहीं उसके रोग के विभिन्न लक्षण देखते-देखते ही कम हो जाते हैं। आरंभ से ही उसका पेट साफ रखने की व्यवस्था करना आवश्यक है।

हड्डी टेढ़ी होना प्रारम्भ हो जाने के बाद चिकित्सा आरम्भ की जाए, तो टेढ़ी हड्डी के ऊपर गरम-ठंडा सेंक देना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े-से समय में ही हड्डी ठीक हो जाती है। किन्तु सिर पर गरमी का प्रयोग करना कभी भी उचित नहीं है।

बच्चे को यथासंभव अधिक समय तक खुली हवा में रखना उचित है और रात्रि के समय घर के बरामदे में या सभी खिड़कियाँ खुली रखकर सुलाने की व्यवस्था करनी चाहिए। उसके कमरे में हमेशा ही यथेष्ट प्रकाश और सूर्य की रोशनी का आना आवश्यक है। समुद्र के किनारे या गाँव में हवा बदलने के लिए यदि रोगी को ले जाया जा सके, तो बहुत लाभ होता है।

रोग की तीव्र अवस्था में बच्चे को खड़ा करना ठीक नहीं है और यदि शिशु बहुत ही छोटा हो, तो उसे बैठाना भी उचित नहीं है। उसकी नरम हड्डियाँ शरीर का भार सह सकने में समर्थ नहीं होती हैं। इस कारण उसे अधिक खड़ा करने से पैर की हड्डियाँ टेढ़ी हो जाती हैं। उसे गोदी में लेकर भी बहुत अधिक बैठाना ठीक नहीं है। ऐसा करने से कई बार तो शरीर टेढ़ा हो जाता है। यदि गोदी में लेना ही हो तो बीच-बीच में बाजू बदल लेना चाहिए। उसे हमेशा ही करवट बदल-बदलकर सुलाकर उसके सिर को टेढ़ा-मेढ़ा होने से बचाना आवश्यक है। उसे दिन में कई बार पेट के बल सुलाना चाहिए। ऐसा करने से मेरुदण्ड टेढ़ा नहीं हो पाता। इस रोग में शिशु को

व्यायाम करने का काफी मौका नहीं मिलता है। किन्तु उसे जिस व्यायाम की आवश्यकता होती है, उसे दिन में दो बार मालिश कर पूरी करनी चाहिए।

इस रोग में पथ्य की ओर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है। इस रोग की कोई दवा नहीं है। किन्तु पथ्य ही इसकी औषधि है। यदि बच्चे के भोजन में यथेष्ट मात्रा में चूना (कैलशियम) और फासफोरस हो, तो वे ही बच्चे के लिए औषधि का काम करते हैं।

तथापि भोजन में फासफोरस और चूने का होना ही पर्याप्त नहीं है। पथ्य में इसका परिमाण समान रूप में होना चाहिए। किन्तु सम-परिमाण होने पर भी ये बच्चे के काम आ जाएँगे ऐसी बात भी नहीं है। चूना और फासफोरस के पाचन के लिए कुछ बिटामिन-डी भी होना आवश्यक है (L. Jean Bogert Ph.D – Dietetics Simplified, p. 50)। इस प्रकार का खाद्य दूध है। इसलिए बच्चे को मुख्यतः दूध पर रखना चाहिए। किन्तु गाय यदि धूप में नहीं घूम पाए, तो उसके दूध में विटामिन-डी नहीं होता।

इसलिए बच्चे को प्रतिदिन धूप-स्नान कराना चाहिए। क्योंकि चमड़ी पर सूर्य की किरणों के पड़ने से शरीर को विटामिन-डी प्राप्त होता है। इस कारण सूर्य की किरणें एक प्रकार का खाद्य है तथा इस रोग में Sun baths are as important as diet—धूप-स्नान पथ्य के समान ही आवश्यक है (Bernarr Macfadden—The Encyclopaedia of Physical Culture, Vol. VIII, p. 3641)।

किन्तु यदि बच्चे को प्रतिदिन एक घंटे तक सूर्य की किरणों में

रखना सम्भव न हो, तो उसे कुछ काड-लिवर आइल प्रतिदिन देना चाहिए।

इस रोग में Codliver oil is of unquestionable value—काड-लिवर आइल की उपयोगिता संदेह से परे है (Sir James Frederick Goodhart, M.D., F.R.C.P.—The Diseases of Children, p. 828)। रोगी का मूल रोग और स्नायविक उत्तेजना काड-लिवर आइल का उपयोग करने से कम हो जाती है। यदि (Malt) के साथ काड-लिवर आइल दिया जाए, तो बच्चा जैसा तेजी से पुष्ट होता है, वैसा ही उसके शरीर में सूखा-रोग-प्रतिरोधक विटामिन-डी और रोग-प्रतिरोधक विटामिन-ए गृहीत होते हैं। किन्तु काड-लिवर आइल हमेशा ही दो बूंद से प्रारम्भ करना चाहिए और प्रतिदिन एक बूंद बढ़ाकर अन्त में बच्चे की आयु के अनुसार आधे ड्राम से एक ड्राम तक दिन में दो बार देना चाहिए। दूध के बारे में भी इसी प्रकार की सतर्कता बरतना आवश्यक है। दूध प्रतिदिन केवल डेढ़ पाव देना चाहिए।

रोगी को यथेष्ट मात्रा में फल, फल का रस और नीबू का रस मिलाकर पानी देना उचित है। उबाली हुई विभिन्न तरकारी और ताजी शाक-सब्जी का यूष भी उसके लिए लाभदायक है।

किन्तु बच्चे को अतिसार न हो जाए, इसका हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है। पेट पर गरम-ठंडा देकर पेट की लपेट चलाते रहने से अतिसार होना कठिन हो जाता है। यदि पतले दस्त हों, तो अस्थायी तौर पर काड-लिवर आइल और फल देना हमेशा ही बंद कर देना आवश्यक है।

रोगी को चावल, रोटी, साबूदाना और बार्ली बहुत कम देना चाहिए। बहुत अधिक चावल और गेहूँ जैसे खाद्य (cereals) इस रोग की उत्पत्ति में विशेष रूप से सहायक होते हैं। इसलिए बच्चे को भात-रोटी के बदले में शाक-सब्जी, उबले आलू और खूब पका केला थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए। पानी या दूध के साथ मिलाकर दी गई शहद भी उसके लिए अच्छा पथ्य है।

जो बच्चे माता का दूध पीकर ही रहते हों, उनकी माता को भी यथेष्ट मात्रा में दूध और काड-लिवर आइल पीने के लिए देना चाहिए।

नव

स्नायविक रोग

मरोड़

[Convulsions]

विभिन्न मांसपेशियों के संकोच और विस्तार के अनुसार हाथ और पैर अथवा शरीर के अनियमित संचालन का ही नाम मरोड़ (convulsions) है। साधारणतः दो वर्ष तक की आयु के बच्चों को यह रोग अधिक होता है। मरोड़ के लक्षण प्रकट होने से पहले, कुछ दिनों पूर्व बच्चे की नींद अकस्मात् टूट जाती है, कभी-कभी वह चमक जाता है और उसका मुंह विकृत हो जाता है। उसके बाद आँखों की

पुतली का फरना, दाँतों का किटकिटाना और मुख-विकृति के साथ साधारणतः मरोड़ प्रारम्भ होते हैं। इसके बाद सिर और गर्दन पीछे की ओर टेढ़े हो जाते हैं और विभिन्न अंग-प्रत्यंग बार-बार संकुचित तथा प्रसारित होते हैं। उसके बाद बेहोशी आ जाती है। कभी-कभी इस अवस्था में थोड़े समय के लिए मुंह नीला पड़ जाता है। नाड़ी बहुत धीमी चलने लगती है, श्वास-प्रश्वास तेजी से होने लगता है तथा बेहोशी के समय ही मलमूत्र आ जाती है। किन्तु यह अवस्था जल्दी ही चली जाती है और काफी पसीना बाहर निकलने के साथ ही साथ बच्चे को होश आ जाता है। रोग का आक्रमण कभी-कभी तो कुछ मिनटों तक और कभी-कभी कुछ घण्टों तक होता है या बच्चा एक बार होश में आ जाने के बाद फिर बेहोश हो जाता है। कभी-कभी मरोड़ शरीर के किसी एक भाग में ही आते हैं और दूसरे भाग में रोग के कोई लक्षण नहीं पाए जाते। कदाचित् इस अवस्था में बच्चे की मृत्यु हो जाती है।

यह किसी प्रकार का रोग नहीं है। यह तो विभिन्न रोगों का लक्षण मात्र है। साधारणतः यह वायु, अजीर्ण और कोष्ठबद्धता का एक लक्षण है। कई स्थितियों में तो सड़े हुए मल का विष शरीर में शोषित हो जाने के कारण ही यह रोग हो जाता है, (J. H. Kellogg, M.D.—Hygiene of Infancy, p. 185)। जिस समय पेट में मल संचित होकर सड़ उठता है, उस समय उसका विष किसी भी अंग पर आक्रमण कर सकता है। जब वह स्नायविक केन्द्र पर आक्रमण करता है, तब इस प्रकार का रोग प्रकट होता है। कभी-कभी चेचक जैसे ज्वर के आक्रमण के कारण भी यह होता है।

इन सभी रोगों के समय शरीर में जो विष-स्रोत खुल जाता है, वही स्नायविक केन्द्र पर आक्रमण कर यह रोग उत्पन्न करता है।

बच्चे को मरोड़ आना शुरू होते ही उसके शरीर पर के सारे कपड़े अलग कर देना आवश्यक है तथा उस बरामदे के खुली हवा में ले आना चाहिए। उसके बाद यदि उसका सिर गरम हो, तो सिर को अच्छी तरह धोकर और सिर के चारों ओर गीला ठंडा गमछा रखकर दोनों पैरों को पानी में डुबो देना चाहिए। इस समय यदि बुखार १०२° से ऊपर हो, तो पाँच-पाँच मिनट के अन्तर से, सात मिनट और दस मिनट के लिए गीले कपड़े की शीतल लपेट देकर बुखार १०२° से नीचे उतार लेना उचित है। किन्तु बुखार १००° से नीचे उतारना कभी भी उचित नहीं है।

यदि मरोड़ के समय रोगी का सिर ठंडा हो, तो, धीरे-धीरे बच्चे को हाथों में लेकर उसके दोनों पैरों को ऊपर करना और सिर को नीचा करना आवश्यक है। ऐसा करने से खून सिर में आएगा और मरोड़ अपने आप ही बंद हो जाएँगे।

मरोड़ बंद हो जाने के बाद बच्चे को अच्छी नींद आ जाए, इसके लिए विशेष प्रयत्न करना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में बच्चे को शान्ति से पड़े रहने देना चाहिए तथा उसे खिलाना या उसे प्रसन्न करने की कोई चेष्टा करना ठीक नहीं है।

बच्चे के कुछ स्वस्थ हो जाने पर पहला अवसर हाथ में आते ही नीबू का रस मिला पानी का डूस देकर उनके पेट को साफ कर लेना चाहिए। It is always safe to give an enema in any case of convulsions—मरोड़ के किसी भी मामले में डूस देना

बिलकुल निरापद है (Ibid, p. 185)। एक बार मरोड़ के लक्षण प्रकट हो जाने पर, बच्चे को कुछ दिनों तक प्रतिदिन एक बार डूस देना चाहिए। इसके बाद जब बुखार चला जाए, तब ४५ मिनट से

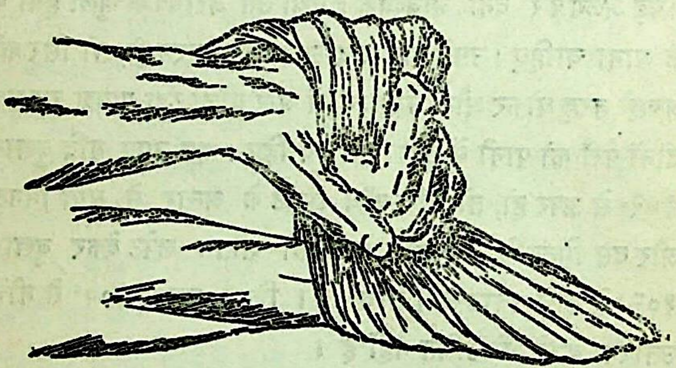

ठंडी मालिश (cold friction)

१ घंटे के लिए बार-बार बदलकर उसे सारे दिन के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना आवश्यक है।

ये सारी व्यवस्था कर, बच्चे के पेट को ठीक रख सकने पर, मरोड़ साधारणतः फिर नहीं आते हैं और जिन रोगों के कारण मरोड़ आते हैं वे भी अधिकांशतः ठीक हो जाते हैं।

किन्तु इसके साथ ही साथ बच्चे के स्नायविक-यन्त्र को ठीक कर लेना चाहिए। इसके लिए जब दौरे नहीं आते हों, तब उसके सिर को धोकर और सिर पर गीला गमछा रखकर प्रतिदिन एक बार उसके सारे मेरुदंड पर ठंडा-गरम प्रयोग कर, उसके सारे शरीर की बीस मिनट तक ठंडी मालिश (cold friction) करनी चाहिए। हर बार दस से पन्द्रह सेकंडों के लिए उसके सारे मेरुदण्ड पर ठंडा देकर

उसके बाद इस समय के लिए गरमी का प्रयोग करना चाहिये और एक समय में इस प्रकार तीन बार करना उचित है। ठंडा-गरम देने के तुरन्त बाद ही, पीठ से टंडी मालिश करना उचित है तथा इस समय मेरूदंड और मस्तिष्क के ऊपर गीले तौलिये से कुछ अधिक देर तक मालिश करनी चाहिए। कुछ दिनों इस प्रकार चिकित्सा करने पर, केवल मरोड़ आना ही बंद नहीं हो जाते अपितु इस प्रकार के बच्चों का साधारणतः जो चिड़चिड़ा स्वभाव होता है वह, उनका हमेशा रोना और पढ़ने-लिखने में खराब होना; आदि सभी दोष दूर हो जाते हैं।

बच्चे की भाप-स्नान जैसी गरम चिकित्सा कभी भी नहीं करनी चाहिये। क्योंकि बहुत अधिक गरमी से स्नायविक रोग बढ़ ही सकता है।

शिशु की बहुत अधिक चिकित्सा भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि कोई चिकित्सा नहीं करने पर भी, कई स्थितियों में, मरोड़ आना अपने आप ही बंद हो जाता है (Langley Porter, M.D., M.R.C.S.—Management of Sick Infant and Child, p. 200)।

बच्चे को हमेशा ही खुली और ठंडी हवा में तथा ठंडे स्थान में रखना चाहिए। उसके पथ्य की ओर भी यथेष्ट ध्यान देना आवश्यक है। उसे कुछ दिनों तक केवल फल, फलों का रस, धारोष्ण दूध और तरकारी के यूष पर रखना चाहिए। बच्चे के अच्छा हो जाने के बाद, उसके भावी जीवन को ठीक बना लेने के लिए उसे विटामिन बी और चूना एवं फासफोरस प्रधान खाद्य विशेष रूप से देना आवश्यक है। इसके लिए बच्चों का लकवा देखिए।

बच्चों का लकवा

[Infantile paralysis]

यह बुखार के बाद होनेवाला एक प्रकार का लकवा है। साधारणतः इस रोग में केवल एक अंग ही अवश हो जाता है। किन्तु एक से अधिक अंग एक साथ इससे ग्रसित देखने में नहीं आते हों, ऐसी बात भी नहीं है। इस राग में मेरुदंड के भीतर के भूरे प्रदार्थ में सजन उत्पन्न होता है और उसके परिणामस्वरूप मेरुदंड के सूजे हुए स्नायु केन्द्र के अधीन अंगों में लकवा मार जाता है। इस प्रकार इसके द्वारा दाहिना पैर, कभी-कभी बायाँ पैर, कभी दाहिना हाथ तो कभी बायाँ हाथ या शरीर का अन्य कोई अंग ग्रसित होता है। साधारणतः एक से पाँच वर्ष के भीतर यह रोग होता है और कई स्थितियों में तो दूसरे वर्ष में ही इस रोग का आक्रमण हो जाता है। रोगी को पहले बुखार आता है। उसके बाद अचानक अप्रत्याशित रूप से यह रोग हो जाता है। अधिकांश अवस्थाओं में पहले शरीर का विस्तृत भाग लकवे से ग्रसित होता है। कभी-कभी हाथ-पैर का लकवा एक साथ होता है। उसके बाद आक्रमण का स्थान धीरे-धीरे कम होकर रोग किसी अंग विशेष में ही रह जाता है। लकवे से ग्रसित अंग को ऊपर उठाने की शक्ति चली जाती है तथा अन्त में वह सूख जाता है और छोटा हो जाता है। कभी-कभी वह टेढ़ा हो जाता है। किन्तु सौभाग्य की बात है कि रोग एक अंग में स्थिर हो जाने के बाद किसी दूसरे अङ्ग में नहीं फैलता।

इस रोग की प्रथम अवस्था में लक्षण देखकर रोग का निर्णय करना एक प्रकार से असंभव है। तेज बुखार, पसीना, सिरदर्द, मेरुदंड और गरदन में वेदना, बहुत अधिक कमजोरी, पेट की गड़बड़ी, पैरों का टेढ़ा हो जाना तथा हिलने-डुलने से ही पैरों में दर्द आदि के साथ इस रोग का आक्रमण होता है। उसके बाद लकवा मार जाता है। प्रथम अवस्था में इसे वातज्वर तथा कभी-कभी मेनिनजाइटिस (Meningitis) कहकर भूल की जाती है।

किन्तु रोग का निर्णय करना असंभव जैसा होने पर भी जितनी जल्दी शरीर को दोषमुक्त करने की व्यवस्था कर ली जाए, उतनी ही आसानी से रोग के आक्रमण को व्यर्थ किया जा सकता है। शरीर का कोई भी रोग क्यों न हो, शरीर में दूषित पदार्थ का बहुत अधिक सञ्चय हो जाने के अतिरिक्त और किसी कारण से रोग नहीं हो सकता। यदि आरंभ से ही प्रयत्न कर शरीर को दोषमुक्त कर लिया जाए, तो शरीर की दूषित अवस्था में बढ़े हुए कीटाणु भी उसके साथ ही साथ शरीर से विदा हो जाते हैं या उनकी रोग-उत्पादक क्षमता चली जाती है। अतएव रोग के कीटाणुओं का आक्रमण व्यर्थ हो जाता है और यदि रोग का आक्रमण हुआ भी तो वह बहुत साधारण होता है।

इसलिए कोई भी ज्वर क्यों न हो आरम्भ में ही नीबू का रस मिला हुआ गरम पानी से डूस देकर पेट साफ कर लेना चाहिए तथा बुखार जब तक नहीं चला जाए तब तक प्रतिदिन नीबू का रस मिला समशीतोष्ण पानी का डूस देना आवश्यक है। बच्चे को नीबू का रस मिला काफी पानी पिलाना भी जरूरी है और उसके सिर को दिन में तीन बार धोकर, सारे शरीर की दिन में दो बार ठंडी मालिश (cold

friction) करनी चाहिए। यदि बुखार बहुत अधिक हो और शरीर गरम तथा सूखा हो तो उसे बार-बार तौलिया-स्नान कराया जा सकता है।

इन सारी चिकित्सा का उद्देश्य है शरीर में संचित विष को देह से बाहर निकाल देना।

यह सारी चिकित्सा करने के बाद भी यदि रोग का आक्रमण हो, तब यह पता लगाना चाहिए कि बच्चा कौनसा अंग नहीं उठा पाता है, तथा तुरन्त ही मेरुदंड की जाँच कर लेना आवश्यक है कि मेरुदंड में कहाँ दर्द है। बच्चा यदि बोल नहीं सकता हो, तो मेरुदंड के इस स्थान पर हाथ लगाने से बच्चे को दर्द मालूम होता है और वह रो पड़ता है। इस प्रकार प्रदाह का स्थान निश्चित कर लेने के बाद, मेरुदंड के स्थान पर दो मिनट गरम सेंक करने के बाद दो मिनट ठंडा देकर एक समय में तीन बार गरम-ठंडा देना चाहिए तथा दिन में तीन बार ऐसा करना आवश्यक है (प्रयोग-विधि के लिए अंतिम अध्याय देखिए)। यदि सूजन का स्थान निश्चित नहीं किया जा सके, तो सारे मेरुदंड पर ही गरम-ठंडा देना चाहिए। इसके बाद सूजन के स्थान पर बिल्कुल निचोड़ा हुआ गीला कपड़ा रखकर (सूजन का स्थान निश्चित नहीं हो पाने पर सारे मेरुदण्ड पर), तथा उसे फ्लानेल से अच्छी तरह ढककर यदि बुखार हो तो, हर आधे घंटे के अन्तर से और, यदि बुखार न हो तो, हर दो घंटे के अंतर से उसे बदल देना आवश्यक है।

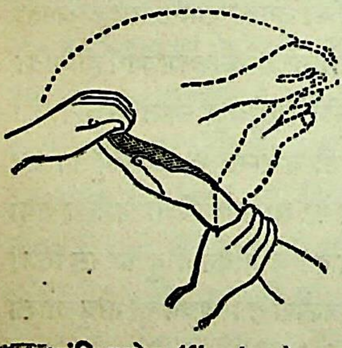

संधि-प्रयोग (flexion)

दिन में चार-पाँच बार ऐसा करना चाहिए।

रोग के आक्रमण के बाद तीन सप्ताह के भीतर भी यदि इस प्रकार की चिकित्सा की जाए, तो बच्चे का लकवा दूर हो सकता है।

किन्तु रोग के आक्रमण के कुछ महीनों बाद जब कि रोग अपनी जड़ जमा लेता है, साधारणतः तभी चिकित्सा प्रारम्भ की जाती है अथवा जिस रोग की कोई दवा नहीं है उसमें परीक्षणार्थ दवा देकर चिकित्सा की एक छलना की जाती है।

इस अवस्था में शिशु के आक्रान्त मेरुदंड पर गरम-ठंडा और लपेट का आरम्भ से ही प्रयोग करना उचित है। जो आक्रान्त अंग मेरुदंड के जिस स्नायविक केन्द्र के अधीन हो, उस स्थान पर ही गरम-ठंडा और लपेट का प्रयोग करना ठीक है। इसके साथ ही साथ धूप-स्नान कराने के बाद घर्षण स्नान ही इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। नियमानुसार बच्चे को प्रतिदिन बीस से तीस मिनट तक घर्षण-स्नान का प्रयोग कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त बच्चे को प्रतिदिन एक बार डूस देना आवश्यक है तथा नीबू का रस मिलाकर उसे काफी पानी पिलाना चाहिए। रोग की जड़ जम जाने पर प्रतिदिन रोगी की तेल से मालिश करना जरूरी है। यह सारे शरीर में अन्ततः बीस मिनट तक करना

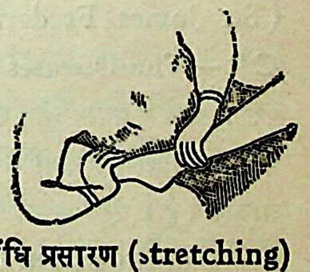

आवश्यक है। इसके साथ ही संधि प्रसारण (stretching) आक्रान्त अंग पर संधि-प्रसारण (stretchings), संधि - भंग (flexion) और सन्धि-घुमाना (rotation) का प्रयोग करना

चाहिए। बच्चा यदि बड़ा हो, तो आसन जैसे आरोग्यमूलक व्यायाम भी कराए जा सकते हैं। किन्तु यदि मेरुदण्ड का सूजन जारी रहे, तो मालिश आदि कभी भी नहीं करनी चाहिए।

पुराने रोग में बच्चे को अंगचालना करते रहने के लिए हमेशा ही उत्साहित करना चाहिए। बच्चा यदि अङ्ग की थोड़ी भी चालना कर पाए, तो अनेक बार उसका फल बहुत मालिश से भी अधिक होता है (Sir Robert Hutchinson, M.D., F.R.C.P.—The Lectures on Diseases of Children, p. 316)।

इस सारी चिकित्सा से यदि शीघ्र ही कोई परिणाम नहीं निकले तो भी इस सारी चिकित्सा से ही धीरे-धीरे बच्चे की हालत सुधर जाती है।

यदि यह रोग पुराना हो जाए और इसके अच्छे होने में अधिक समय लगे, तो भी बिलकुल निराश नहीं हो जाना चाहिए।

इस रोग में दो बातों पर ध्यान देना जरूरी है। एक तो मेरुदंड को सुधार लेना और दूसरे मांसपेशियों को भली प्रकार पुष्ट बना लेना (Sir James Frederick Good-heart, M.D., F.R.C.P.—The Diseases of Children, p. 634)। मेरुदंड पर गरम-ठंडे के प्रयोग और शरीर पर मालिश से इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति होती है। रोगी के आक्रान्त अंग को हमेशा ही गरम रखना आवश्यक है। ऐसा करना विशेष रूप से जरूरी है। आक्रान्त अंग साधारणतः ठंडा ही रहता है। इसलिए उसे फ्लानेल से सदा ढक रखना चाहिए या भारी मोजे पहिना रखना चाहिए। यदि अंग को सेंक आदि द्वारा गरम कर लिया जाए और उसके बाद उस पर ढकी

हुई लपेट (प्रयोग-विधि के लिए अंतिम अध्याय देखिए) का प्रयोग किया जाए और उसे किसी प्रकार अल्प परिमाण में गरम रखा जाए, तो रोगी को बहुत लाभ पहुँचता है।

यह रोग अचानक हो जाए तो भी जिनके शरीर में रोग के आक्रमण के अनुकूल अवस्था पहले से ही वर्तमान रहती है, उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है अर्थात् जिनके शरीर में दूषित पदार्थों का संचय बहुत अधिक हो जाता है, उन्हें ही यह रोग होना सम्भव होता है। इसलिए शरीर को सभी प्रकार से दोषमुक्त कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए। जो स्थिति शरीर में रोग उत्पन्न करती है, उससे जब शरीर को मुक्त कर लिया जाता है, तब शरीर के भीतर रोग ठीक होने के अनुकूल अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसलिए शरीर को बिलकुल दोषमुक्त कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए। पेट साफ रहे इस बात की विशेष चेष्टा करना आवश्यक है। रोगी को सारी रात के लिए पेट की लपेट अवश्य देनी चाहिए और प्रतिदिन धूप-स्नान (sun bath) कराकर अंत में बीस मिनट के लिए घर्षण-स्नान का प्रयोग करना चाहिए।

बच्चे को यथेष्ट मात्रा में फल, फल का रस, ताजी शाक सब्जी का रस, धारोष्ण दूध, तरकारी का यूष, उबली हुई तरकारी और शहद तथा नीबू के साथ जल देना आवश्यक है। जहाँ तक हो सके, नमक नहीं दिया जाए।

यदि बुखार हो, तो रोगी को केवल बुखार का ही पथ्य देना चाहिए। इसके लिए ज्वर चिकित्सा देखिए। बुखार के बाद उसे यथेष्ट फल, फल का रस, सलाद (salad), धारोष्ण दूध, उबली

हुई तरकारी, शहद, नीबू का रस मिला पानी और विटामिन-बी प्रधान खाद्य विशेष रूप से देना आवश्यक है। विटामिन-बी स्नायुओं (nerves) को विशेष रूप से सक्रिय रखता है। विभिन्न स्थानों में परीक्षा करके देखा गया है कि यथेष्ट विटामिन-बी की कमी के कारण बहुत-से स्नायविक रोगों के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। विटामिन-बी के लिए उसे ढकी से कूटा हुआ चावलों का मांड़ सहित भात, चोकर सहित आटे की रोटी, पतला गुड़, गेहूँ का अंकुर और योष्ट (Brewer's yeast) देना आवश्यक है। गोटा गेहूँ भिगो देने पर उसमें से अंकुर निकल आते हैं। इन्हें उसे मझली चम्मच से एक चम्मच भरकर दिन में तीन बार देना चाहिए। गेहूँ का अंकुर आजकल दवाइयों की दूकान से खरीदा जा सकता है। उसे बिमाक्स (Bemax) कहते हैं। यीस्ट को भी आजकल औषध विक्रेताओं के यहाँ खरीदा जा सकता है।

रोगी को चाय, काफी, मांस, अंडा, गरम मसाला, अधिक मसाला, साफ की हुई शक्कर (refined sugar) और सफेद मैदा देना ठीक नहीं है। जहाँ तक हो सके, नमक कम देना चाहिए।

रोगी के पथ्य में चूना और फास्फोरस रहें, ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके लिए दांत गिरने की चिकित्सा देखिए।

तुतलाना

[Stammering]

बातचीत के समय जीभ के अटकने का ही नाम तुतलाना है। इस

रोग में कभी-कभी शब्द का भली प्रकार उच्चारण नहीं होता और उच्चारण करने के जी-तोड़ प्रयत्न में हाथ, पाँव और सारा शरीर कांप जाता है। रोगी बातचीत करने की जितनी ही अधिक चेष्टा करता है, बात उतनी ही अटक जाती है। किन्तु हर समय यह रोग रहता हो, ऐसी बात नहीं है। कभी यह कम होता है, तो कभी ज्यादा। जिस समय रोगी उत्तेजित अवस्था में रहता है, उस समय यह अधिक होता है। यह एक बड़ा विचित्र बात है कि बहुत-से रोगी बहुत धीमी आवाज में बोल सकते हैं और उनमें से अधिकांश को गाना गाने में कोई दिक्कत नहीं होती।

यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि तुतलाना स्वरयन्त्र

कटि-स्नान (hip-bath)

का कोई रोग नहीं है। It is not dependent upon any

anatomical defect—शरीर रचना की किसी खराबी के परिणाम-स्वरूप यह रोग नहीं होता (Hugh Thursfield, M. A., F.R.C.P.—Diseases of Children, p. 702)। It is a deranged nervous function—यह रोग एक प्रकार की स्नायविक विशृङ्खला के कारण होता है (Lillie Eginton Warren—Defective Speech and Deafness, p, 102)। जिस समय रोगी शान्त अवस्था में हो, उस समय वह पूरी बातचीत बिना बाधा के कर सकता है और घबरा जाने पर, उसकी बात अस्पष्ट हो जाती है।

इसलिए स्वरयंत्र की चिकित्सा कर इस रोग को कभी भी ठीक नहीं किया जा सकता। उसकी स्नायुएँ सबल और स्वस्थ हो जाएँ, ऐसी व्यवस्था करना ही इस रोग की वास्तविक चिकित्सा है।

किन्तु स्नायु शरीर का कोई पृथक यंत्र नहीं है। वे शरीर के ही भाग हैं। जिनका पेट बहुत दिनों से खराब रहता है और स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, उन्हें ही अंत में कभी-कभी इस प्रकार का स्नायविक रोग हो जाता है।

इसलिए the first step in the treatment is to attend to the patient's general health—रोगी के साधारण स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना ही इस रोग की पहली चिकित्सा है (Encyclopaedia Medica, Vol. 12, p. 230)।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति विशेष रूप से तब हो सकती है, जब कि पेट साफ रखने की व्यवस्था की जाए, रोगी को प्रतिदिन पेट की लपेट (wet girdle) का प्रयोग कराया जाए, सारे शरीर की मालिश

की जाए और एक बार उसे कटि-स्नान (hip-bath) कराया जाए। कटि-स्नान दो मिनट से प्रारंभ कर शिशु को दस मिनट और बालक को पन्द्रह मिनट तक कराना चाहिए। उसे प्रतिदिन दो बार स्नान कराना भी विशेष रूप से आवश्यक है।

इस सारी व्यवस्था से शरीर जब कुछ सुधर जाए, तब रोगी के स्नायुओं को सुधार लेने की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन उसका सिर धोकर और सिर पर गीला तौलिया रखकर सारे मेरुदंड पर एक मिनट ठंडा देने के बाद, एक मिनट गरम सेंक कर तीन बार गरम-ठंडे का प्रयोग करना आवश्यक है। उसके बाद २० से ३० मिनट के लिए उसकी पीठ से सारे शरीर पर घर्षण-स्नान (cold friction) प्रयोग करना चाहिए।

इसके साथ ही साथ पेट और मेरुदंड का अच्छी तरह व्यायाम हो जाए, ऐसी व्यवस्था करना जरूरी है। इसके लिए रोगी को भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, हलासन, सर्वाङ्ग-आसन, मत्स्यासन, शीर्षासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रा, उड्डीयान और शवासन का प्रतिदिन धीरे-धीरे अभ्यास कराना उचित है।

बच्चा जिन शब्दों के उच्चारण में तुतलाता हो, उनका उससे बार-बार उच्चारण कराना चाहिए। माता या पिता स्वयं शब्द का उच्चारण करने के बाद, उसी शब्द का रोगी से उच्चारण करवा सकें, तो बहुत अच्छा हो। जब तक वह इन सभी शब्दों का भली-भाँति उच्चारण नहीं कर पाए, तब तक उन शब्दों का बार-बार उससे उच्चारण कराना आवश्यक है। पहले छोटे-छोटे वाक्य लेकर उच्चारण-व्यायाम (exercise in articulation) शुरू कराना चाहिए।

बच्चे से हर दिन जोर-जोर से पढ़वाना चाहिए और धीरे-धीरे हलकी आवाज़ में बातचीत करने की शिक्षा देना उचित है। गाने के लिए भी उसे हमेशा प्रोत्साहित करना चाहिए। इन सभी व्यायामों का बहुत दिनों तक अभ्यास कराया जाए।

रोगी को हमेशा ही बहुत प्रसन्न रखना चाहिए और खिलखिला-कर हँसाना चाहिए। प्रतिदिन सोकर उठने के बाद यथासंभव अधिक समय तक खुली हवा में घूमाना और ठंडी जगह में रहना आवश्यक है। उसमें सेवाभाव और आपत्तियों से संघर्ष करने की प्रवृत्ति जागृत करनी चाहिए।

रोग का ठीक हो जाने के बाद भी, यदि मन में खिन्नता आ गई, तो रोग अस्थायी रूप से फिर लौट आ सकता है। किन्तु इस

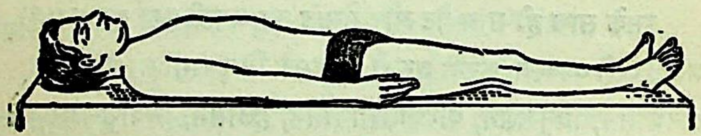

शवासन

कारण डरना नहीं चाहिए। आसन आदि करने और पेट को ठीक रखने से रोग धीरे-धीरे बिलकुल दूर हो जाता है।

यदि कभी बातचीत करते-करते तुतलाहट जैसी आने लगे, तो उसी समय से सारे शरीर को ढीला (relax) कर देना चाहिए। ऐसा करने से क्षणमात्र में ही तुतलाने की-सी स्थिति दूर हो जाती है। इसके अतिरिक्त शवासन करना उचित है और इसे इस प्रकार वश में आना चाहिए कि जब इच्छा हो तब ही शरीर को शिथिल किया जा सके। रोगी यदि बड़ा हो, तो प्रतिदिन श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करना और

स्वकल्प भावना (auto-suggestion) लेना नितांत आवश्यक है।

यह चिकित्सा जितनी जल्दी प्रारम्भ की जा सके, उतना ही अच्छा है। बारह वर्ष से कम आयु के बालक के स्वास्थ्य पर ही यदि ध्यान दिया जाए और अच्छी तरह बातचीत करने का अभ्यास कराया जाय, तो यह रोग अपने आप ही हमेशा के लिये चला जाएगा (J. P. Crozer Griffith, M.D.., Ph. D.—The Diseases of Infants and Children, Vol. I, p. 283)। किन्तु सन्तान की ओर ध्यान न देकर केवल अपने ही काम-काज में व्यस्त रहा जाए, तो शिशु के इस रोग का ठीक होना कठिन हो जाता है।

तुतलानेवाले लड़कों के साथ बच्चे को खेलने देना कभी भी ठीक नहीं है। कई स्थितियों में तो तुतलाहट की नकल करने के पदिणामस्वरुप ही बच्चे तुललाने लग जाते हैं। यदि एक ही परिवार के लड़के-लड़की तुतलाते हों, तो उन्हें विभिन्न स्थानों में रखने की व्यवस्था करनी चाहिए।

बच्चे को कभी भी नहीं पीटना चाहिए। उसके साथ हमेशा ही प्रेमपूर्ण बरताव करना ठीक है। जब वह बातचीत करे, तब कभी भी नहीं हसना या ताना मारना चाहिये। उसे हमेशा प्रोत्साहित ही करना छाहिए। यह बात उस के मन में बैठा देनी चाहिए कि रोग ठीक हो जाएगा। जब तक उसके मन में पूरी तरह आत्मविश्वास नहीं आता, तब तक दुष्ट लड़कों से उसे हमेशा बचाना चाहिए।

इस रोग में पथ्य की ओर ध्यान देना विशेष रुप से आवश्यक है। इसके लिए मरोड़ (convulsions) की चिकित्सा देखिए।

दस

चर्म रोग

अलाई

[prickly Heat]

यह स्वेद-ग्रंथि के प्रसाद सम्बन्धी पीड़ा है। इससे जो खुजली उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त कष्टदायक होती है। कई बार तो ये बहुत दिनों तक बनी रहती हैं और, यदि रोग का कारण दूर नहीं किया जाय, तो बार-बार हो जाती है।

साधारणतः पेट पर आधे घंटे के लिए दो-तीन दिन मिट्टी की पुलटिस का प्रयोग करने से ही अलाइयाँ मिट जाती हैं। बचा यदि छोटा हो, तो, दस मिनट के लिए मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। स्नान से पहले रोगी को धूप में रखकर गीली मिट्टी मलने और आधे घंटे बाद स्नान करा देने से साधारणतः एक से तीन दिनों के भीतर अलाईयाँ दूर हो जाती हैं। किन्तु रोगी के पेट को हमेशा ही ठीक रखना चाहिए और नीबू का रस मिलकर काफी पानी पिलाना चाहिए।

जिन बच्चों को बहुत अधिक अलाइयाँ होती हैं, उनके बारे में यह समझना चाहिए कि उन्हें अधिकांश समय तक गरमी में बंद कमरे में रखा गया हैं और ठंडी हवा का लाभ उन्हें कम ही मिलता है।

इस प्रकार की व्यवस्था में परिवर्तन विशेष रूप से आवश्यक है। उन्हें हमेशा ही पतले कपड़े पहिनाकर या नंगे बदन ठंड कमरे में या खुली हवा में रखना चाहिए।

दुलपित्ती

[Urticaria]

यह एक प्रकार का चर्मरोग है। इस रोग में शरीर के विभिन्न स्थानों का चमड़ा फूल उठता है। फूलाव कीड़े से काटे हुए सूजन के समान दिखाई पड़ती है। सूजे हुए स्थान में प्रबल खुजली और जलन होती है। यह रोग नया और पुराना दोनों ही प्रकार का देखने में आता है और एक बार हो जाने पर प्रायः बार-बार हो जाता है। इसका दूसरा नाक **nettle rash** है।

दुलपित्ती शरीर के किसी भी स्थान में हो सकती है। साधारणतः कुछ ही घंटों में यह चली जाती है। किन्तु कठिन अवस्था में कई दिनों तक बनी रहती है और नई-नई सूजन उत्पन्न करती रहती है। रोग कठिन हो, तो उसके साथ ही कई बार तो बुखार भी आता है।

साधारणतः पेट खराब होने पर यह रोग होता है। किन्तु the common cause of utricaria is the action of a toxion circulating in the blood—खून में किसी प्रकार का विष होने पर ही साधारणतः दुलपित्ती होती है (Encyclopaedia Medica, Vol. 13, p. 191)। इस प्रकार गठिया (gout), वातव्याधि और मलेरिया जैसे रोग होने पर

कई बार तो दुर्लपित्ती हो जाता है।

इसलिए सबसे पहले शरीर को दोषमुक्त कर लेना आवश्यक है। इसके लिए नीम की पत्तियाँ उबालकर उसके गुनगुने पानी से रोगी को तुरंत ही डूस देना चाहिए और कम से कम सात दिनों तक इसी प्रकार डूस दिया जाए। डूस देने से पहले पेट पर गरम-ठंडा देना हमेशा ही आवश्यक है। इसके बाद भाप-स्नान देना ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। छोटे शिशु को तीन-चार मिनट तक और बड़े बालक को बारह मिनट तक भाप-स्नान कराया जा सकता है। भाप-स्नान के बाद गीले तौलिए से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिए। कई स्थितियों में तो पेट साफ कर देने के बाद, केवल एक बार ही भाप-स्नान करा देने से रोग चला जाता है। यदि रोगी का पेट गरम हो, तो प्रतिदिन दस मिनट के लिए एक-चौथाई इञ्च मोटी मिट्टी की पट्टी और गरम नहीं होने पर, पेट की लपेट का प्रयोग करना चाहिए। पेट पर ध्यान देना हमेशा ही आवश्यक है। क्योंकि थोड़ी-सी भी कोष्ठबद्धता और आँतों की गड़बड़ी नए सिरे से रोग उत्पन्न कर सकते हैं

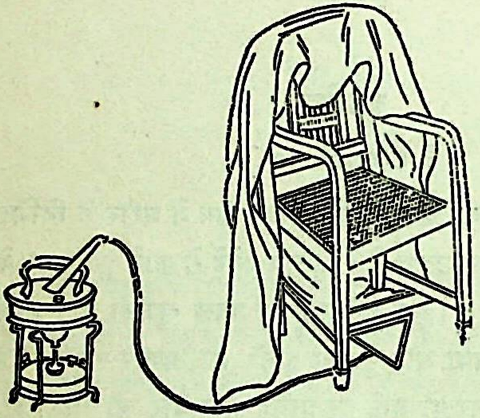

भाप-स्नान (Steam bath)

(Ibid., p. 194)। रोगी हमेशा ही घर में नहीं पड़ा रहे, इसकी भी व्यवस्था करनी चाहिए और उसे प्रतिदिन व्यायाम करना उचित है। कई स्थितियों में स्नायविक रोगी को केवल यही रोग होता है। इसलिए It is the patient, rather than the disease, which requires treatment—रोग की चिकित्सा की अपेक्षा रोगी का इलाज करना आवश्यक है (Ibid. p. 194)। बच्चे को जब यह रोग हो जाए, तब इस बात का पता लगा लेना आवश्यक है कि उसे कृमि तो नहीं है और यदि हो, तो तुरंत ही उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

इस रोग में पथ्य पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। रोगी का मुख्य पथ्य फल, फल का रस, सलाद, तरकारी की यूष, उबली तरकारी, माँड़ सहित ढेंकी में कुटा हुआ चावल, चोकर समेत आटे की रोटी और धारोष्ण दूध होना चाहिए।

कई बार तो तेलवाली मछली या मछलीका तेल, सीप, ककड़ा, तली हुई मछली, अंडा, चाय, काफी और कोको खाने-पीने से यह रोग उत्पन्न होता है। इसलिए इस रोग में इन सभी खाद्यों को विष मानकर छोड़ देना चाहिए।

दाद

[Ring-worm]

यह बचपन का एक साधारण रोग है। यह शरीर के किसी भी स्थान में हो सकता है। किन्तु जब यह सिर में हो जाता है, तब बहुत भयंकर होता है।

यह रोग एक प्रकार के किटाणु के कारण उत्पन्न होता है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाता है। घर में पाले गए जीव जन्तुओं से भी बहुधा यह रोग लग जाता है। जो लोग कुत्ते और बिल्ली पालते हैं, उसके घरों में यह रोग प्रायः देखा जाता है।

किन्तु कीटानु शरीर में प्रविष्ट होने पर ही यह रोग होता हो, ऐसी बात नहीं है। जिनके शरीर में रोग फैलने के अनुकूल अवस्था पहले से ही वर्तमान रहती है, उन्हें ही यह रोग साधारणतः होता है। इसलिए शरीर की जिस दूषित और विषाक्त परिस्थिति के कारण रोग फैलता है उसे दूर न कर मलहम जैसी चीजों से रोग को दबा देना कभी भी ठीक नहीं है। इस प्रकार चर्मरोग दवा देने के परिणाम-स्वरूप ही रोगी को कई स्थितियों में अजीर्ण, पेट फूलना, श्वासकष्ट, हृदय की धड़कन बढ़ना, हृदय-शूल, सिर दर्द और स्नायविक दुर्बलता जैसे रोग होते हैं (S.C. Burnett, M. D.—Diseases of the Skin p. 1—117)।

इसलिए इस रोग में आरम्भ में ही पेट साफ कर लेना चाहिए और इसके लिए बच्चे को कुछ दिनों तक उबाली हुई नीम पत्ती का पानी से डूस दिया जाए और प्रतिदिन दो घंटों के लिए पेट की लपेट का प्रयोग कराया जाए। बच्चे को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी पिलाना भी आवश्यक है। ईसके बाद दाद पर गिचोर हुई पानी की पट्टी रखकर उसे फ्लानेल से ढक देना चाहिए। यह पट्टी प्रतिदिन आधे घंटे के लिए रखना आवश्यक है। यदि दाद का स्थान खूब गरम हो या दाद में घाव पड़ गए हों, तो आधि इञ्च मोटी गीली मिट्टी की खुली पुलटिस दिन में दो बार पन्द्रह मिनट के लिए दाद के

ऊपर लगाना चाहिए। शरीर की जिस दूषित गन्दगी पर कीटाणुओं की वृद्धि होती है, ढकी हुई लपेट या मिट्टी की खुली पट्टी उस गन्दगी को खींच लाती है। इस कारण पट्टी का प्रयोग करने से रोग देखते-देखते जड़ से दूर हो जाता है और उसके दूर हो जाने पर शिशु का स्वास्थ्य सभी प्रकार से सुधर जाता है।

सभी रोगों में आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। रोगी को फल, फल का रस, सलाद, तरकारी का यूष, उबली तरकारी और मट्ठा आदि प्रतिदिन यथेष्ट मात्रा में देना आवश्यक है। रोगी के पथ्य में ए और सी विटामिन विशेष रूप से रहें, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। विटामिन-ए विशेष रूप से टमाटर, धनिए की पत्ती, चौलाई की शाक, चने का शाक, परवल की पत्ती, नये नीम की पत्ती, पालक की भाजी, पुदीना, लेटूस शाक और बन्दगोभी तथा फूलगोभी के बाहर के पत्तों में होता है। इनका सलाद और तरकारी बनाकर कई प्रकार से देना चाहिए। उसे काड-लिवर आइल देना विशेष रूप से आवश्यक है। विटामिन-सी धनिए की पत्ती, खजूर, अमरूद, अनन्नास, कमला नीबू और टमाटर जैसी वस्तुओं में यथेष्ट परिणाम में रहता है। ये सभी खाद्य रोगी को खिलाना चाहिए। ताजी धनिए की पत्ती, पालक की भाजी और गाजर जैसी वस्तुओं का ताजा रस बहुत लाभदायक होता है। यह रस शिशु को प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए।

सभी प्रकार की तली हुई चीजों, हलवाई के यहाँ की सभी वस्तुओं और शक्कर से इस रोग में परहेज करना चाहिए।

दाद पर साबुन लगाना कभी भी ठीक नहीं है। उससे दाद हमेशा ही बढ़ सकती है।

एक्ज़ीमा

[Eczema]

एक्ज़ीमा एक प्रकार का चर्मरोग है। यह बचपन का अत्यन्त कष्टप्रद एक साधारण रोग है। यह साधारणतः सिर, गाल, गर्दन, हाथ और पैरों के जोड़, पेट और पीठ जैसे स्थान में होता है। आक्रांत स्थान का चमड़ा पहले गरम और लाल रंग का हो जाता है। उसके बाद इन स्थानों पर छोटी-छोटी जलपूर्ण फुंसियाँ जैसी उठती हैं और बहुत तेज खुजली चलती है। उसके बाद इनसे स्वच्छ पीले रंग का और चिपचिपा एक प्रकार का रस निकलता है तथा यह सारा स्थान सूजकर कच्चे, रसस्रावी छोटे-छोटे घावों में परिणत हो जाता है।

साधारणतः मैला-कुचैलापन, नाक और कान के मैल का शरीर में मिलना, गंदे तौलिए में अधिक समय तक लिपटे रहना, प्रदाहजनक ऊनी वस्त्र, कड़े साबुन जैसी चीजों के उपयोग से यह रोग होता है। किन्तु ये सब केवल गौण कारण हैं। देहसंचित विभिन्न दूषित पदार्थ ही इसका मूल कारण है। जब प्रकृति शरीर में इकट्ठा हुए विष को चमड़ी के रास्ते बाहर निकाल देने का प्रयत्न करती है, उस समय ही यह रोग होता है। कई स्थितियों में तो बच्चों के अन्य उद्गमपूर्ण रोगों की तरह बड़ी आँत की दोषपूर्ण अवस्था ही इस रोग का मुख्य करण होती है (J. H. Kellogg, M.D.—The Hygiene of Infancy, p. 170)। पाकस्थली और आँत की विभिन्न

गड़बड़ियों के कारण यह रोग होता है। पेशाब यदि भली प्रकार साफ नहीं होता हो, तो भी यह रोग हो सकता है (J.P. Crozer Griffith, M.D., Ph.D.—The Diseases of Infants ant Children, Vol, II, P, 562)। इस प्रकार के सभी रोगियों का निश्वास और मल साधारणतः बहुत बदबूदार होता है। यह माना जाए कि सारा शरीर ही एक प्रकार का विषकुण्ड हो गया है।

इसलिए शरीर की जिस दोषपूर्ण अवस्था के कारण सभी रोग होते हैं, उसे दूर कर लेना ही अन्य रोगों की भाँति एक्जीमा की भी मुख्य चिकित्सा है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, पेट को साफ करना, पेशाब साफ रखना और रोमकूपों को खुला रखना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ थोड़ी स्थानीय चिकित्सा कर लेने से ही यह रोग ठीक हो जाता है।

इसके लिए नीम की पत्ती डालकर गरम किए गए पानी का डूस कुछ दिनों तक देना सबसे पहले आवश्यक है। यदि पेट गरम हो, तो पेट पर दस मिनट के लिए मिट्टी की और गरम न हो, तो दो घंटे के लिए पेट की लपेट और दिन में एक बार, आयु के अनुसार, तीन से पन्द्रह मिनट के लिए कटि-स्नान कराना चाहिए।

इसके बाद, यदि एक्जीमा का स्थान गरम हो या एक्जीमा घावपूर्ण हो, तो उस पर दिन में एक से दो बार पन्द्रह से बीस मिनट तक के लिए मिट्टी की और यदि गरम न हो, तो गीले-कपड़े से ढकी पट्टी एक घंटे के लिए प्रयोग करना आवश्यक है। यदि एक्जीमा में खून निकलता हो या उसमें घाव पड़ गए हों तो एक घंटे से अधिक समय

तक मिट्टी या पट्टी का प्रयोग करना कभी भी उचित नहीं है। बच्चा जितनी ही कम उम्र का हो, मिट्टी की पुलटिस उतने ही कम समय के लिए देनी चाहिए।

बच्चा एक्जीमा के ऊपर खुजलाकर घाव नहीं कर ले, इस बात का ध्यान रखने को कहा जाता है, किन्तु यह कुछ असम्भव बात है। एक्जीमा की खुजलाहट कभी भी बन्द नहीं होती। किन्तु कई बार मिट्टी या गीले कपड़े की ढकी पट्टी देते ही, जब उस स्थान की गन्दगी और उस पर बढ़े हुए कीटाणु यथेष्ट मात्रा में बाहर हो जाते हैं तब खुजलाहट अपने आप ही बन्द हो जाती है और घाव आदि भी ठीक हो जाते हैं।

किन्तु बच्चा यदि बहुत छोटा हो, तो उस पर मिट्टी का प्रयोग करते समय यह बात हमेशा ही ध्यान में रखना आवश्यक है कि उसे ठंड नहीं लगे और उसका शरीर ठंडा नहीं होने पाए। इसके लिए दोपहर के समय मिट्टी का प्रयोग किया जा सके तो बहुत अच्छा हो। या मिट्टी का प्रयोग करते समय कुछ सेकेण्डों के लिए थोड़े गरम पानी की एक थैली बीच-बीच में शिशु के पैरों पर रखते जाना चाहिए।

एक्जीमा को हमेशा ही साफ रखना चाहिए। किन्तु इसके लिए उस पर साबुन लगाना कभी भी ठीक नहीं। एक्जीमा पर साबुन लगाने से वह हमेशा बढ़ती ही है। उसके बदले साफ गीली मिट्टी से एक्जीमा को प्रतिदिन एक बार धो लेना चाहिए। यदि सिर में एक्जीमा हो तो मिट्टी से उसे प्रतिदिन धो डालना आवश्यक है। किन्तु एक्जीमा यदि क्षतयुक्त हो, तो मिट्टी को मिट्टी की नई हंडियाँ में एक घंटे तक पकाने के बाद, ठंडी होने पर काम में लाना चाहिए।

एक्जीमा जिस समय क्षतयुक्त हो जाती है और उससे खून बहने लगता है, उस समय उसकी चिकित्सा का प्रमुख समय होता है। उस समय पेट आदि को साफ रखकर तथा पथ्य की ओर ध्यान देकर रोग के मूल कारण को ही दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उसके बाद आगे कभी यदि एक्जीमा सिर उठाए, तो थोड़ी-सी चिकित्सा से ही वह ठीक हो जाती है।

रोगी के पथ्य पर हमेशा ही विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। कई स्थितियों में तो औषधियों से जितना लाभ नहीं होता, उससे कहीं अधिक लाभ पथ्य उचित रीति से लेने और स्वास्थ्यविधि का पालन करने से हो जाता है (Henry W. Stelwagon, M.D, Ph.D.—A Treatise on Diseases of the Skin, p. 308)।

रोगी को यथेष्ट मात्रा में फल, फल का रस, सलाद, तरकारी की यूष, उबली तरकारी, बारह घंटे भिगोई गई तथा कुचली हुई किशमिश का पानी और काड-लिवर आइल प्रतिदिन देना चाहिए। इस रोग में अण्डा, दूध और शक्कर से परहेज करना चाहिए तथा भात, रोटी जैसे श्वेतसार जातीय खाद्य को कम करना एवं अधिक मात्रा में मट्ठा, फल और तरकारी देना आवश्यक है। रोगी को पथ्य में ऐसा खाद्य देना चाहिए जिनमें विटामिन-ए और सी यथेष्ट मात्रा में हों। इसके लिए साधारण ज्वर की चिकित्सा देखिए।

इस रोग में जहाँ तक हो सके, नमक नहीं खाना चाहिए। क्योंकि अधिक नमक खाने से गठिया, विभिन्न चर्मरोग और पुरानी सर्दी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं (Robert Hutchinson,

M.D., F.R.C.P.—Food and Principles of Dietetics, p. 330)। रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी पीने के लिए देना आवश्यक है। उसे हमेशा कम खाना चाहिए। बहुत अधिक खाना इस रोग का सबसे प्रमुख कारण है। जो बच्चे कृश और दुर्बल होते हैं तथा जो कम खा पाते हैं, उनकी अपेक्षा मोटे और अधिक खाने बच्चों को यह रोग अधिक होता है।

एक्जीमा एक प्रकार का पुराना रोग है। एक बार ठीक हो जाने पर यह फिर सिर उठाता है। किन्तु एक बार उसे ठीक कर लेने के बाद कुछ दिनों तक प्राकृतिक चिकित्सा चलाने के पश्चात् रोग तीव्र कभी भी नहीं हो सकता। ऐसे समय उसका पुनः आक्रमण होने पर वह साधारण चिकित्सा से ही चला जाता है और अन्त में पूर्ण रूप से लुप्त हो जाता है।

ग्यारह

घाव

साधारण घाव

[General Sore]

कुछ बड़े हो जाने पर बच्चे प्रायः ही अपने हाथ-पैर काट लेते हैं और माता-पिता की असावधानी के कारण कटा हुआ अंग प्रायः ही पुराने घाव के रूप में परिणत हो जाता है।

हाथ-पैर जैसा कोई स्थान यदि कट जाए, तो उस स्थान पर उसी समय एक घंटे के लिए जलपट्टी का बार-बार बदलकर प्रयोग करने से घाव अपने आप ही सूख जाता है। जल-पट्टी को हमेशा ही गीली और ठंडी रखना आवश्यक है। यदि घाव में पीब पैदा हो जाए, तो घाव पर दिन में दो बार गरम-ठंडा देना चाहिए। उससे दो-तीन दिनों में ही साधारण घाव सूख जाता है।

यदि बच्चे के शरीर में पुराना घाव हो तो, साथ-साथ में देहशोधनमूलक चिकित्सा चलानी चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के घाव में प्रकृति शरीर में इकट्ठा विष को घाव के रास्ते बाहर निकाल देने का प्रयत्न करती है। इसीलिए रोग आसानी से ठीक नहीं होता। ऐसी स्थिति में शरीर को दोषमुक्त किए बिना घाव को तुरन्त ठीक नहीं किया जा सकता। इसलिए आरम्भ में ही रोगी को कुछ दिनों

तक नीम के पत्ते से उबला पानी का डूस देना आवश्यक है और दो-तीन दिनों तक पाँच से दस मिनट तक भाप-स्नान देना चाहिए। घाव पर प्रतिदिन एक घंटे के लिए आधी इञ्च मोटी गीली मिट्टी की पुलटिस का प्रयोग करना आवश्यक है और दो-तीन दिनों तक मिट्टी का प्रयोग करने के बाद, घाव पर प्रतिदिन गरम-ठंडा (alternate compress) देना चाहिए। दो से तीन मिनट के लिए गरम सेंक देने के बाद, घाव के स्थान को ठंडे पानी की पट्टी से ठंडा कर लेना चाहिए और एक समय में ऐसा तीन बार करना जरूरी है। घाव पर गरम-ठंडा देने से उस स्थान पर खून की हलचल होती है और मिट्टी की पट्टी घाव का विष खींच लाती है। इसी कारण घाव ठीक हो जाता है। किन्तु मिट्टी घाव पर एक घंटे से अधिक समय के लिए कभी भी नहीं रखना चाहिए। इसका कारण यह है कि मिट्टी की पट्टी एक घटे में घाव से इतना विष खींच लेती है कि घाव के विष को वह सोख लेती है। इसके बाद यदि वही मिट्टी घाव पर रखी रहे, तो वह और अधिक विष तो खींच नहीं पाती अपितु विष देने लग जाती है। इसलिए अधिक देर तक, घाव पर मिट्टी रखने से घाव बढ़ जाता है और उसके ठीक होने में देरी लग जाती है।

रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी पिलाना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो सके, उसे फल, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी, मट्ठा और चोकर समेत रोटी पर रखना आवश्यक है। रोगी को विटामिन ए और सी पूर्ण पथ्य काफी मात्रा में पथ्य के रूप में देना जरूरी है। इसके लिए दाद की चिकित्सा देखिए। इस रोग में रोगी को थोड़ा लहसुन देना अच्छा है।

खाज

[Itches]

खाज एक प्रकार के कीटाणु (Aeares Scabiei) के कारण होती है। किन्तु यह हमेशा ही चमड़ी के ऊपर होती है। इस कारण खाज किसी को भी नहीं होती। जिस समय शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का भार बढ़ जाता है और प्रकृति चमड़ी के रास्ते इस विष को बाहर करने की चेष्टा करती है, उस समय ये कीटाणु चमड़ी में घाव उत्पन्न कर प्रकृति को अपने घर की सफाई करने में सहायता ही पहुँचाते हैं।

इसीलिए खाज का जबर्दस्ती नहीं दबाना चाहिए। घर की गंदी नाली को जिस प्रकार बंद कर देना बुरा है, उसी प्रकार खाज को दवा देना बुरा है। खाज को जबर्दस्ती दबाने से पुराने अजीर्ण जैसे विभिन्न कठिन रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

खाज होने पर शुरू में ही उबाली हुई नीम-पत्ती का पानी से डूस देकर पेट को साफ कर लेना चाहिए और जब तक खाज पूरी तरह ठीक नहीं हो जाए, तब तक इसी प्रकार डूस देना आवश्यक है। रोगी को दो-तीन दिनों तक भाप-स्नान (steam-bath) करना चाहिए। छोटे बच्चे को पाँच मिनट और बालक को सात मिनट तक भाप-स्नान कराया जा सकता है। शिशु को नीवू का रस मिलाकर काफी पानी पिलाना चाहिए।

इसके साथ ही साथ रोगी के पेट पर दस से बीस मिनट तक के लिए मिट्टी की पट्टी प्रतिदिन देना आवश्यक है। यदि रोगी को दिन में एक बार कटि-स्नान कराया जा सके, तो बड़ा अच्छा हो।

इसके बाद विभिन्न घावों पर दिन में दो बार आधे घंटे के लिए मिट्टी की पट्टी रखना आवश्यक है। शरीर में जिस स्थान पर मिट्टी रखी जाए उस स्थान पर एक दिन छोड़कर एक दिन इसे पाँच मिनट के लिए सेंक देना चाहिए।

रोगी के पथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है। उसे काफी मात्रा में फल, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी और तरकारी का यूष देना चाहिए तथा कुछ दिनों तक भात के बदले में चोकर समेत आटे की रोटी खिलाना जरूरी है। उसे दो चम्मच शहद पानी में मिलाकर प्रतिदिन देना चाहिए तथा रोटी के साथ एक कोया लहसुन देना आवश्यक है। इस रोग में लहसुन औषधि का काम करती है। रोगी के पथ्य में विटामिन ए और सी विशेष रूप से रहना चाहिए। इसके लिए दाद का पथ्य देखिए।

इस चिकित्सा से सात-आठ दिनों के भीतर या उससे भी पहले शरीर की सफाई हो जाती है और उसके साथ-साथ खाज भी ठीक हो जाती है।

फोड़ा

[Boil]

खाज के समान फोड़ा को भी कभी नहीं दबाना चाहिए। इसका कारण यह है कि जब शरीर में अनेक प्रकार गन्दगी इकट्ठी हो जाती है

और प्रकृति उसे चमड़े के रास्ते बाहर निकाल देने का प्रयत्न करती है, तब ही फोड़ा होता है।

इसलिए फोड़ा होते ही नीम के पत्ते से उबला पानी का डूस देकर शुरू में ही पेट को साफ कर लेना आवश्यक है तथा फोड़ा ठीक नहीं हो जाने तक प्रतिदिन डूस देना चाहिए।

फोड़े पर दिन में दो बार दस मिनट के लिए सेंक करना आवश्यक है तथा ढकी मोटी पट्टी का प्रयोग कई बार करना चाहिए। इससे ही फोड़ा अपने आप फूट जाता है।

फोड़ा फूट जाने के बाद उस पर तीन मिनट गरम सेंक करने के पश्चात् तीन मिनट ठंडा देकर अट्ठारह मिनट के लिए दिन में दो बार गरम-ठंडा देना चाहिए तथा तीन बार एक घंटे के लिए (एक घंटे से अधिक नहीं) उबली (boiled) मिट्टी की पुलटिस का प्रयोग करना आवश्यक है।

यदि एक साथ बहुत-से फोड़ा हो जाएँ, तो पेड़ू पर आधा इञ्च मोट्टी की पुलटिस प्रतिदिन २० मिनट के लिए दिन में दो बार देना चाहिए। कई स्थितियों में तो ऐसा करने से दो-तीन दिनों में ही नए फोड़े होना बन्द हो जाता है।

रोग के समय रोगी को, जहाँ तक हो सके, फल, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी, तरकारी का यूष तथा दूध के बदले में मट्ठा देना चाहिए। सभी रोगों में रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी पिलाना आवश्यक है। रोगी के पथ्य में विटामिन ए और सी विशेष रुप से रहना आवश्यक है। इसके लिए दाद का पथ्य देखिए। हर रोज थोड़ा लहसुन भी रोगी को देना उचित है।

बारह

कर्ण-रोग

कान की स्वस्थ्यनीति

हमारी श्रवणेन्द्रिय एक आवश्यक अंग है। आँखों के बाद ही उसका स्थान है। कई स्थितियों में तो, कान की स्वास्थ्यनीति पर नहीं चलने के कारण ही इसमें विभिन्न रोग हो जाते हैं और कई बार तो उनके परिणामस्वरूप ही बहरापन तक आ जाता है। शैशव-काल में अनेक प्रकार के कर्ण-रोग प्रायः हो जाया करते हैं। इसलिए बचपन से ही दोनों कानों को स्वस्थ रखने की हर प्रकार से चेष्टा करनी चाहिए।

कानों को अच्छी हालत में रखने का सबसे अच्छा उपाय उनसे यथासंभव कम छेड़छाड़ करना हैं। साधारणतः, कानों का मैल बाहर निकालने के लिए ही हम कानों पर सबसे अधिक अत्याचार करते हैं। मैल बाहर निकाल ने के लिए कानों के भीतर शलाका डालना बहुत अधिक खतरनाक है। कपड़े की वत्ती बना कर कनों में डालना भी हानिकारक है। इस से बहुत थोड़ा-सा मैल ही कान से निकल पाता है। किन्तु इससे कान के मैल को नीचे की ओर कान के पर्दे पर ठेल दिया जाता है। वास्तव में जब तक कोई रोग न हो, तब तक कान का मैल बाहर निकालने का प्रयत्न करना ही ठीक नहीं है।

क्योंकि कान का मैल बाहर निकालने के लिए प्रकृति ने स्वयं ही व्यवस्था कर रखी है। जिस समय कान के साथ छेड़छाड़ नहीं की जाती, उस समय यह भीतर ही सूख जाता है और पतली चमड़ी के आकार में अपने आप ही बाहर निकल जाता है। जब कान में बहुत अधिक मैल जम जाए, उस समय यह समझना चाहिए कि कान की स्वाभाविक अवस्था नहीं है और उसमें कुछ बीमारी हो गई है। यदि कान में बहुत अधिक खुजलाहट हो, तो भी यही समझना चाहिए कि वह किसी रोग का लक्षण है और कान जितना ही खतरा जाता है, रोग उतना ही बढ़ता है। कान में इकट्ठा मैल को दूर करने का जितना ही अधिक प्रयत्न किया जाता है, उतना ही मैल अधिक इकट्ठा होता है। क्योंकि ऐसा करने से जो उत्तेजना होती है, उसके कारण कान के भीतर रस अधिक निकलता है और उसके परिणामस्वरूप मैल का सञ्चय बढ़ जाता है। वस्तुतः कान में मैल का जमा होना प्रकृति की एक प्रकार की रक्षामूलक व्यवस्था है। अनावश्यक रूप से इसे कभी भी बाहर नहीं निकालना चाहिए। प्रकृति ने कान की रक्षा के उद्देश्य से जिसकी व्यवस्था की है, उसे ही साफ कर देने की चेष्टा कर माताएँ बच्चों की हानी ही करती है। कान की सफाई करते समय शिशु इस काम में जो बाधा डालते हैं, वह प्रकृति द्वारा डाली गई बाधा ही है।

कानों को हमेशा चोट लगने से बचाना चाहिए। कान पर चोट लगने से कई बार तो कान का पर्दा फट जाता है। कभी-कभी इसके कारण कान में सूजन आ जाती है और किसी-किसी समय तो बच्चा बहरा हो जाता है। कान मल देने की आदत भी बहुत खराब है।

साधारण अवस्था में बच्चे के दोनों कानों को हमेशा ही खुले रखना चाहिए। इससे कानों की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है। यदि अधिक समय तक कानों में ठंडो हवा लगने की संभावना हो, तो अस्थायी रूप से दोनों कानों को ढका जा सकता है। क्योंकि बहुत अधिक ठंड लगने के कारण कई बार तो बच्चों का कान पक जाता है। बहुत अधिक गरम हवा से भी अस्थायी रूप से कान को बचाना चाहिए।

बच्चे के कान के पास मुँह ले जाकर चिल्लाना बिलकुल भी ठीक नहीं है। इस तरह चिल्लाने से बच्चे को बहरापन आ सकता है। बन्दूक आदि छोड़ने के समय जो शब्द होता है, उसके परिणामस्वरूप भी कई बार कान का पर्दा फट जाता है।

स्नान के बाद दोनों कानों को पूरी तरह जलशून्य कर लेना चाहिए। बच्चे को हमेशा ही इस प्रकार स्नान करना आवश्यक है कि उसके कान के भीतर पानी नहीं जाए। कान के भीतर पानी चले जाने पर, यदि वह कुछ दिनों तक कान में ही रह गया, तो मध्य-कान (middle ear) का सूजन उत्पन्न हो सकसा है।

बच्चे को यदि सर्दी हो जाए, तो उस पर ध्यान देना आवश्य हैं। यदि सर्दी अधिक दिनों तक चलती रही, तो उसके कारण बहरापन आ सकता है।

जो बच्चे मुँह से ही हमेशा श्वास लेते हैं, वे भी कई बार तो बहरे हो जाते हैं। इसलिए यदि कोई बच्चा मुँह से श्वास लेता हो, तो उसे ४५ मिनट से एक घंटे के लिए छाती की लपेट देना चाहिए

और कुछ दिनों तक नाक के ऊपर गरम-टडे का प्रयोग करना आवश्यक है।

बच्चे के कान में से किसी भी प्रकार का स्राव निकलते ही, उसे बंद करने की तुरंत व्यवस्था करनी चाहिए। अधिकांश कर्ण-रोगों में कान की श्लैष्मिक झिल्ली की रक्तस्रावी अवस्था (catarrhal condition) उत्पन्न हो जाती है।

शिशु के कान के किसी भी रोग को मामूली मानना ठीक नहीं है। कान के रोग को यदि मामूली माना गया, तो अधिकांश अवस्थाओं में वह पूर्ण या आंशिक बहरापन उत्पन्न कर सकता है।

किसी भी रोग में बच्चे को कुनैन नहीं देना चाहिए। बहुत-से लोग उसका व्यवहार करके ही सारे जीवन के लिए श्रवण-शक्ति खो बैठे हैं। शरीर के अन्य अंगों के रोगों की भाँति, यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि दोनों कान शरीर से कई भिन्न अंग नहीं हैं। जिस समय अधिक दिनों तक कान का कोई रोग चलता रहे, उस समय यह समझना चाहिए कि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। ऐसे समय केवल कान की ही चिकित्सा कर कान को स्थायी रूप से कभी भी ठीक नहीं किया जा सकता। उस समय भीतर और बाहर से बच्चे के शरीर की सफाई कर उसके शरीर को पहले स्वस्थ कर लेना आवश्यक है। उसके बाद कान की सामान्य चिकित्सा करने से ही कान का रोग चला जाता है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि खून से ही शरीर के समस्त अङ्ग पुष्टि पाते हैं। यदि खून ही खराब हो, तो उससे किसी भी

अङ्ग की अच्छी तरह मरम्मत नहीं हो पाती। इसलिए सभी रोगों के आरंभ में ही मल, मूत्र और पसीने के रास्तों को साफ कर लेना आवश्यक है और उसके साथ ही साथ यकृत (लीवर) आदि अङ्गों को पेट की लपेट आदि के द्वारा अच्छा कर लेना चाहिए।

जिन्हें प्रायः ही कोई न कोई कर्ण-रोग हो जाता हो, उनके रहन-सहन की पद्धति में तुरन्त ही परिवर्तन कर देना आवश्यक है।

कान-दर्द

[Ear-ache]

साधारणतः मध्यम-कान (middle ear) के सूजन के कारण ही कान दर्द होता है। यह बचपन का एक साधारण रोग है। कई बार तो जब बच्चे किसी भी तरह रोना बन्द नहीं करते तब वे ऐसा कान-दर्द के कारण करते हैं। इसे कभी मामूली रोग समझना ठीक नहीं। अनेक स्थितियों में तो, उसे उपेक्षा करने के कारण ही श्रवण-शक्ति का स्थायी रूप से ह्रास हो जाता है।

साधारण कान-दर्द में कान और आक्रान्त बाजू के गाल के ऊपर एक साथ सेंक कर एक ही बार में कान के नीचे से गले तक के स्थान पर बहुत ठंड तौलिए प्रयोग करना आवश्यक है। इस प्रकार ऊपर गरम और नीचे ठंडा, दो से पाँच मिनट तक रखना चाहिए। उसके

बाद दोनों ही पट्टियों को हटाकर, कान और गाल को आधे मिनट के लिए ठंडा कर लेना चाहिए और नीचे गाल पर मालिश कर इस स्थान को गरम कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार करने के बाद, फिर कान और गाल पर गरम सेंक तथा गले पर ठंडी तौलिए का प्रयोग करना जरूरी है। एक बार में ऐसा तीन बार करना चाहिए। प्रयोग से पहले सिर को अच्छी तरह धो लेना जरूरी है और सिर पर एक गीला गमछा रखना आवश्यक है। साधारण कान-दर्द इससे ही चला जाता है।

उष्ण पाद-स्नान

(hot foot-bath)

यदि रोग पुराना हो गया हो, तो इसके साथ ही साथ रोगी के शरीर की शोधनमूलक (eliminative) और स्वास्थ्य-सुधारमूलक चिकित्सा करनी चाहिए। अर्थात् प्रतिदिन सारे शरीर की मालिश तथा पेट पर गरम-ठंडा देकर कुछ दिनों तक उबाली हुई नीम-पत्ती के पानी से डूस और पाद-स्नान (foot-bath) या धूप स्नान के बाद साधारण स्नान तथा सारी रात्रि के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना आवश्यक है। इस रोग में पाद-स्नान से बहुत लाभ होता है।

कई बार तो सिर धोकर पाद-स्नान कराने से ही कान-दर्द कम हो जाता है। पाद-स्नान के समय सिर, कान और आँखों को गीले गमछे से ढक रखना चाहिए।

शिशु का पथ्य भी यथासंभव अनुत्तेजक, आसानी से पचनेवाला, और क्षारधर्मी होना आवश्यक है। इसके लिए उसे प्रतिदिन दूध, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी, तरकारी की यूष और शक्कर के बदले में शहद देना चाहिए।

यदि दाँत गिरने आदि के कारण यह रोग हो तो संबंधित रोगों की चिकित्सा करना आवश्यक है।

कान पकना

[Otorrhoea]

यदि कान से पीव बाहर निकलता हो, तो उसे कान पकना कहते हैं। कान का स्राव साधारणतः घना और पीले रंग का होता है। नए रोग में प्रायः ही ऐसा होता है। जिस समय कान का घाव सूख जाता है, उस समय स्राव साधारणतः जल की भाँति होता है। कभी-कभी स्राव भूरा रंग का (brownish) और बदबूदार होता है। जिन सब स्थितियों में रोगी को उपयुक्त संभाल नहीं की जाती है या कान की हड्डी रोगग्रस्त होती है उनमें ही ऐसी अवस्था हो जाती है। कान में पीव होने पर, थोड़ा-बहुत बहरापन हमेशा ही रहता है और ठीक-ठीक संभाल नहीं करने पर अंत में अवस्था अत्यन्त खराब हो सकती है।

यदि कान साधारण पका हो, तो कान के नीचे ठंडा गमछा रखकर कान और गले के ऊपर सेंक देने से ही वह ठीक हो जाता है (कान-दर्द देखिए)। किन्तु यदि वह ऐसा करने से ठीक न हो, तो स्वास्थ्य को ठीक कर लेने की चेष्टा अवश्य ही करनी चाहिए। इसके लिए कुछ दिनों तक रोगी को उबाली हुई नीम-पत्ती के पानी से डूस और पाँच से दस मिनट तक उष्ण पाद-स्नान कराकर नहलाना आवश्यक है। यदि रोगी को सर्दी हो, तो उसे बीच-बीच में एक घंटे के लिए छाती की लपेट का प्रयोग कराना चाहिए। रोग की तीव्र अवस्था में दूध यथासंभव कम कर, उसके बदले में दही देना आवश्यक है। उसके पथ्य में ए और सी विटामिन यथेष्ट मात्रा में रहें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए दाद का पथ्य देखिए।

तेरह

आँखों के रोग

आँखों की स्वास्थ्यनीति

आँखों को नीरोग रखने का प्रथम उपाय है उन्हें साफ रखना। बिलकुल बचपन से ही बच्चे के जीवन में यह काम प्रारम्भ कर देना चाहिए। प्रतिदिन सुबह सोकर उठने के बाद ही, बच्चे को दोनों

आँखें अच्छी तरह धोकर आँखों का मैल निकाल देना आवश्यक है।

आँखों को धूल और धुएँ से हमेशा बचाना चाहिए। आँखों में कोई भी गन्दी चीज यदि चली जाए, तो ठंडे पानी से आँखें धोकर उन्हें साफ कर लेना आवश्यक है। गन्दी अंगुली शिशु की आँख में कभी भी नहीं लगाना चाहिए। कई अवस्थाओं में तो, गन्दी अंगुली आँख में लगाने से ही आँखों की तकलीफ उठ खड़ी होती है। साबुन का पानी आँखों में नहीं जाने पाए, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए सिर में साबुन लगाते समय दोनों आँखों को बन्द कर रखना हमेशा आवश्यक है।

काफी देर तक पढ़ना-लिखना करने के बाद और मलत्याग के बाद बच्चे की दोनों आँखों पर कई बार पानी के छींटे डालकर आँखों को ठंडी कर लेना चाहिए। उससे आँखों की उत्तेजना नष्ट हो जाती है।

धूप में पुस्तक रखकर या थोड़े प्रकाश में बच्चे को कभी भी पढ़ने-लिखने नहीं देना चाहिए। बहुत छोटे अक्षरोंवाली पुस्तक भी उसे पढ़ने देना उचित नहीं है। अध्ययन करते समय प्रकाश हमेशा ही सिर के ऊपर या पीछे रहना आवश्यक है। यदि यह सम्भव न हो, तो उसके बाजू में रखना उचित है। उसे लेटे-लेटे कभी भी पुस्तक नहीं पढ़ने देना चाहिए। बहुत तेज प्रकाश से ही उसकी दोनों आँखों को बचाना आवश्यक है। सूर्य की ओर उसे कभी भी टकटकी नहीं लगाने देना चाहिए।

यदि उसकी एक आँख में रोग हो जाए, तो वह दूसरी आँख में

भी नहीं फैल पाए, इसके लिए हमेशा ही सतर्क रहना आवश्यक है। अतएव जिस अंगुली से रोगग्रस्त आँख को स्पर्श किया जाए, उसे दूसरी आँख के सम्पर्क में लाना बिलकुल भी उचित नहीं है।

आँख की बिलनी

[Stye]

आँखों की पलकों (eyelids) पर जो छोटी फुंसी हो जाती है उसे आँख में की बिलनी कहा जाता है। इसके लक्षण प्रकट होते ही इस पर दिन में दो बार गरम-ठंडा देने से ही यह दो दिनों में ठीक हो जाती है। साधारणतः दो मिनट गरम सेंक के बाद दो मिनट के लिए ठंडा देकर बारह मिनट तक गरम-ठंडा का प्रयोग करना ही पर्याप्त है। फुंसी फूट जाने के बाद आँखों पर उबली, ठंडी मिट्टी दिन में दो बार पन्द्रह मिनट के लिए रखना चाहिए। पहले ही मिट्टी देने से फुंसी बैठ जाती है।

किन्तु यदि फुंसी बार-बार हो, तो पेट की लपेट आदि के द्वारा देहशोधनमूलक चिकित्सा अवश्य ही करनी चाहिए।

आँख आना

[Ophthalmia]

आँख और आँखों की पलकों के अन्दर की झिल्ली के प्रदाह का नाम आँख आना है। इसे कभी भी मामूली नहीं समझना चाहिए। क्योंकि कई स्थितियों में तो मनुष्य इसी से अंधा हो जाता है।

रोग होते ही आक्रान्त आँख के ऊपर गरम-ठण्डे का प्रयोग ही इसकी चिकित्सा है। तीन मिनट तक गरम सेंक के बाद छः मिनट ठण्डा देकर २७ मिनट के लिए दिनों में दो बार आँखों पर गरम-ठंडा देने से ही दो-तीन दिनों में आँख अपने आप ही ठीक हो जाती है। आँखों पर गरम सेंक करते समय गाल को छोड़कर आँख से कपाल तक सेंक करना आवश्यक है। आँखों पर गरम सेंक करने से पहले, सिर को हमेशा ही अच्छी तरह धो लेना चाहिए। यदि सूजन अधिक हो, तो रोगी के आँख पर दिन में तीन बार गरम होते ही बदली जानेवाली ठण्डे पानी की पट्टी बीस से तीस मिनट के लिए, या पन्द्रह मिनट के लिए उबली ठण्डी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना जरूरी है। यदि आवश्यकता हो, तो इसका प्रयोग बार-बार किया जा सकता है। गीले कपड़े की पट्टी या मिट्टी की पट्टी इस प्रकार करना चाहिए कि वह भौं का अतिक्रम न हो, आँख बन्द कर आँख पर मिट्टी देने से वह आँखों में किसी भी स्थिति में नहीं जा पाती और आँख का सारा विष खींच लाती है। उस समय यदि इच्छा हो, तो आँखों पर एक परत गीला कपड़ा रखकर उसके ऊपर मिट्टी रखी जा सकती है। मिट्टी हटाने के बाद आँखें बन्द कर दोनों ही आँखों को अच्छी तरह धो लेना चाहिए। रोग के समय आँखों पर पट्टी कभी भी नहीं बाँधना उचित है।

किन्तु रोग यदि कठिन हो या ऊपर बताई गई चिकित्सा से वह ठीक नहीं होता हो, तो रोग दूर नहीं होने तक कुछ दिनों तक उबाली हुई नीम-पत्ती के पानी से डूस देने का आवश्यक है तथा भात, रोटी बन्द कर फल, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी, तरकारी की यूष

और बारह घंटे भिगोई हुई किशमिश का पानी तथा मट्ठा आदि देना चाहिए। रोगी के पथ्य में काफी मात्रा में ए और सी विटामिन का इस्तेमाल करना जरूरी है। इसके लिए दाद की चिकित्सा देखिए। रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी भी पिलाना चाहिए।

रोगी की आँखों को हमेशा ही विशेष रूप से साफ रखना जरूरी है। रात को सोते समय रोगी के कोपों पर मक्खन या मलाई लगा देना चाहिए। उससे आँखें चिपकने नहीं पातीं।

आँखों पर ठण्डा प्रयोग करने या सेंक करते समय यथासम्भव साफ कपड़े या रुई का उपयोग करना चाहिए।

चौदह

दंत-रोग

दाँतों की स्वास्थ्यनीति

मनुष्य के दाँत की हीरे से तुलना की जाती है। सौन्दर्य और स्वास्थ्य की दृष्टि से यदि विचार किया जाए, तो दाँतों का मूल्य हीरे से कम नहीं होना चाहिए।

रोगरहित दाँतों का स्वास्थ्य के साथ बहुत अधिक सम्बन्ध है। दाँत यदि अच्छे न हों, तो अच्छी तरह चबाकर खाया नहीं जा सकता और उसके कारण शरीर का अच्छी तरह सुगठित होना असम्भव हो

जाता है। इसके अतिरिक्त दाँत की पीब आदि यदि पेट के भीतर चली गई, तो स्वास्थ्य कभी भी ठीक नहीं रह सकता।

अतएव शिशु के दाँत अच्छे रहे, इसके लिएं सन्तान के गर्भ में होने के समय से ही सचेष्ट रहना आवश्यक है। सन्तान के गर्भ में आने के बाद से ही माता के भोजन में चूना (कैलशियम), फासफोरस, और विटामिन-डी यथेष्ट मात्रा में रहें, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए माता को प्रतिदिन यथेष्ट दूध पीने के लिए देना आवश्यक है और प्रतिदिन स्नान के पहले उसे यथेष्ट समय तक धूप-स्नान कराना जरूरी है।

प्रसव के बाद भी, माता की स्तनों में काफी दूध रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि बच्चे को यदि माता का दूध पर्याप्त मात्रा में नहीं मिले और उसे दूसरा दूध लेना पड़े, तो उसके दाँत उतने सख्त नहीं हो पाते।

दूध के दाँत यद्यपि स्थायी होते हैं, तथापि उनकी विशेष रूप से रक्षा करना जरूरी है। क्योंकि उनके स्थान में ही स्थायी दांत निकलते हैं।

उचपन से ही सुबह और रात को अर्थात् दिन में दो बार दाँत साफ करना हो, तो रात के भोजन के बाद करना उचित है। क्योंकि दाँतों में जो भोजन लगा रह जाता है, वह ही सड़ जाने पर दाँतों को नष्ट कर देता है। दांतों के बीच की जगह हमेशा साफ रखना चाहिए। इसके लिए मुंह धोते समय मुंह से पानी इस प्रकार बाहर निकलना चाहिए कि दाँतों के बीच की दरार से भोजन के सभी कण बाहर निकल जाएँ।

दाँत साफ करने के लिए अनेक प्रकार के दंतमंजन काम में लाए जाते हैं। किन्तु इनमें से सभी निर्दोष नहीं होते। कई स्थितियों में तो सस्ता दंतमंजन उपयोग में लाने के फलस्वरूप ही दाँत नष्ट हो जाते हैं। साफ मिट्टी सबसे अच्छा दंतमंजन है। मिट्टी से दाँत साफ करने के बाद, आवश्यकता होने पर, बुरुश (brush) का उपयोग किया जा सकता है। दाँतों का बुरुश हमेशा ही विशेष रूप से साफ रखना चाहिए। एक आदमी का बुरुश दूसरे आदमी द्वारा काम में लाया जाना बिलकुल भी ठीक नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से, पेड़ की डाली का बुरुश (दतौन) सबसे अच्छा है। किन्तु दाँतों को बहुत देरी तक साफ करते रहना कभी भी ठीक नहीं है। उससे बहुत अधिक लार निकलती है और उसके परिणामस्वरूप अजीर्ण रोग हो जाता है। दाँत साफ करते समय दो अंगुलियों से जोर से जीभ को प्रतिदिन साफ करना चाहिए। इससे जीभ सबल, सख्त और निरोग रहती है।

अच्छी तरह चबाने लायक हो जाने पर ही बच्चों को कड़ी चीज चबाकर खाने के लिए देना चाहिए। ऐसा करने से दाँतों की जड़ में खून की आवागमन होती है और यह दाँतों के लिए एक प्रकार के व्यायाम का काम करती है। हमेशा ही नरम पदार्थ खाने से दाँत कमजोर पड़ जाते हैं।

बच्चा मुंह से श्वास न ले, इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। मुंह से श्वास लेने के कारण मुँह की श्लैष्मिक झिल्ली और जीभ की गीलापन कम हो जाती है। उसके परिणामस्वरूप विभिन्न दन्त-रोग होते हैं।

कभी भी जल्दीबाजी कर दाँत निकलवा डालना उचित नहीं है। दंत-रक्षा की सारी चेष्टाएँ विफल हो जाएँ, तो भी दाँत निकलवा देने का विचार तक मन में नहीं लाना चाहिए।

यह बात हमेशा ही ध्यान में रखना आवश्यक है कि निरोग दाँतों के लिए शरीर भी निरोग होना चाहिए। क्योंकि दाँत शरीर का अविच्छेद अंश है। वास्तव में, दाँत एक प्रकार की हड्डी है। शरीर की सारी हड्डियाँ जिस समय कमजोर और खराब हो जाती हैं, उस समय दाँतों पर उनका विशेष प्रभाव पड़ता है। अतएव दाँतों की रक्षा के लिए इस प्रकार के पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए कि शरीर की हड्डियाँ उससे सबलता और पुष्टि प्राप्त करें। चूना (कैलशियम) और फासफोरस हड्डियों के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। अतः जिन खाद्यों में चूना और फासफोरस यथेष्ट मात्रा में हों, वे ही शिशु को देना चाहिए। खाद्य में यथेष्ट मात्रा में चूना नहीं होने से दंत-क्षय, दाँतों का हिलना, हड्डी का टेढ़ा होना, तथा बच्चों को सूखा रोग (रिकेट्स) आदि विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

चूना प्राप्त करने का सबसे सरल साधन दूध और दही ही है। इसके अतिरिक्त शलगम की पत्ती, बादाम, राब (पतला गुड़), बंदगोभी, लालशाक,, अंजीर (fig), सीमजातीय बीज, पपीता, फूल-गोभी और भिंडी में क्रमानुसार कम मात्रा में काफी चूना (कैलशियम) होता है। मछली की हड्डी और माँस की हड्डी चबाकर खाने से भी बहुत चूना प्राप्त किया जा सकता है (Henry. C. Sherman—Food and Health, p. 98)।

हमारे शरीर में चूने के बाद फासफोरस की सबसे अधिक

उपयोगिता है। शरीर के स्नायु, दाँत और हड्डियों के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक है। शरीर के फासफोरस का ७५ प्रतिशत भाग हड्डियों और दाँतों में होता है। शेष २५ प्रतिशत भाग शरीर के अन्य भागों में स्थित होकर अनेक आवश्यक कार्य करता है। इसलिए जब खाद्य में यह यथेष्ट परिमाण में नहीं होता, तब शरीर में यह जिस स्थान में अधिक होता है, उस स्थान से अधिक दाँत और हड्डियों से ही इसे खींच लेने के लिए शरीर वाध्य होता है (Bernarr Macfadden —Tooth Troubles, p. 157)। उसके परिणामस्वरूप हड्डियाँ और दाँत कमजोर हो जाते हैं और कई बार तो सूखा रोग (रिकेट्स) जैसे रोग हो जाते हैं। अतएव जब भी दाँत तथा हड्डियों का क्षय और शारीरिक वृद्धि का अभाव दिखाई पड़े, तब खाद्य में यथेष्ट चूना और फासफोरस की व्यवस्था करनी चाहिए (E. W. H. Cruickshank, M.D.—Food and Physical Fitness, p. 31)।

फासफोरस दूध, सूखे सीमजातीय बीज, बादाम, सेम की सूखी फली, जई का आटा (oatmeal) अखरोट, करेला, केले का फल, पपीता, किशमिश, सेम का हरीफली, आँवला, बैंगन, अंजीर, तरूई आदि में क्रमानुसार कम परिमाण में पाया जाता है।

किन्तु चूने की भाँति फासफोरस का भी श्रेष्ठ साधन दूध ही है। किसी खाद्य में केवल चूना और फासफोरस होना ही यथेष्ट नहीं है। इनका अनुपात समान होना आवश्यक है। दूध मे यह अनुपात समान होता है, इसलिए इन दोनों ही प्रमुख खनिज लवणों को प्राप्त करने के लिए दूध ही सर्वश्रेष्ठ खाद्य है। इसके अतिरिक्त चूना और फासफोरस के परिपाक (metabolism) के लिए विटामिन-डी

नितान्त आवश्यक है, नहीं तो चूना और फासफोरस शरीर के काम में नहीं आते। दूध में विटामिन-डी होता है, इसलिए दूध के दोनों श्रेष्ठ खनिज लवणों का बहुत आसानी से परिपाक हो जाता है। इस हिसाब से दही भी समान रूप से लाभदायक है। किन्तु गाय यदि धूप में घूमकर घास नहीं खाती हो, तो उसके दूध में विटामिन-डी नहीं रहता। इसलिए बच्चे की धूप में प्रतिदिन तेल मालिश करनी चाहिए। ऐसा करने से शरीर को विटामिन-डी मिल जाता है (Lucius Nicholls, M.D., B.C—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 31)। यदि यह संभव नहीं हो, तो उसे भोजन के बाद प्रतिदिन काड-लिवर आइल देना चाहिए। काड-लिवर आइल आरम्भ में तीन बूँद से शुरू करना चाहिए और दिन-प्रतिदिन एक बूँद बढ़ाकर अन्त में चाय की चम्मच से एक चम्मच देना उचित है। गर्मियों में और जब पेट रोगग्रस्त हो, काड-लिवर आइल कभी भी नहीं देना चाहिए।

दाँतों की रक्षा के लिए विटामिन-सी की भी विशेष रूप से आवश्यकता होती है। खाद्य में यदि यथेष्ट विटामिन-सी हो, तो दाँतों में चूने का ग्रहण (fixation of calcium) आसानी से हो जाता है। यह विटामिन अमरूद, बंदगोभी, चौलाई, धनिए की पत्ती, केला, खजूर, अनन्नास, कमला नीबू और टमाटर आदि में क्रमानुसार कम परिमाण में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। दूध, अंकुरित मूंग, नीबू, खीरा और बिजौरा नीबू में भी यह यथेष्ट पपिमाण में पाया जाता है। शिशु को थोड़ा-थोड़ा फल का रस और फल देना आवश्यक है।

शिशु के दंत-गठन में विटामिन-ए की भी विशेष आवश्यकता पड़ती

हैं। धनिए की पत्ती, चौलाई शाक, परवल की पत्ती जैसी हरी शाक और काड-लिवर आइल में भी विटामिन ए यथेष्ट मात्रा में होता है।

दाँत निकलने संबंधी रोग

[Diseases of Dentition]

छठे-सातवें महीने में बच्चे के दाँत साधारणतः निकलने लगते हैं। धीरे-धीरे उसके बीस दाँत आते हैं। इन दाँतों को दूध के दाँत (milk teeth) कहा जाता है। ये बहुत दिनों तक रहते हैं और इस समय भीतर ही भीतर स्थायी दाँत बनते जाते हैं। शिशु की आयु सात वर्ष की हो जाने पर दूध के दाँत गिरना शुरु होते हैं और बारह वर्ष की आयु होने से पहले ही उनका स्थान हर स्थयी दाँत ले लेते हैं।

जिस समय बच्चों के दांत पहले-पहल निकल ते हैं, उस समय उन्हें अनेक रोग हो जाते हैं। अतिसार (डाइरिया), सर्दी, ब्रंकाइटिस, निमोनिया, मरोड़ (convulsions), एक्जिमा, अजीर्ण अग्निमान्द्य और नींद नहीं आना आदि बहुत-से रोग इस समय हो जाते हैं। किन्तु इन सभी रोगों के लिए दाँत का निकलना कहाँ तक जिम्मेदार है, इसमें विशेष संदेह है (Sir James Frederick Goodheart, M.D., F.R.C.P.—The Diseases of Children, p. 40)। दाँत निकलने के समय जो रोग देखे जाते हैं, वे दाँत निकलने के कारण ही होते हैं इस बात का कोई प्रमाण नहीं है

(Prof. Dr. F. Lust—The Treatment of Children's Diseases, p. 6)। जब रोग समझ में नहीं आता, तब, कई स्थितियों में तो, उसे दाँत निकलने का रोग बता दिया जाता है (George Frederick Still—Common Disorder and Diseases of Children, p. 8 to 14)।

वास्तव में, दाँत निकलना एक प्राकृतिक क्रिया है। स्वस्थ बच्चों को दाँत निकलते समय साधारणतः कई रोग नहीं होता (Encyclopaedia Medica Vol. II, p. 661)।

जिस समय शिशु का स्वास्थ्य ठीक नहीं होता या शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का सञ्चय हो जाता है, उस समय ही उसे विभिन्न रोग देते हैं।

यदि प्रारम्भ से ही शैशव की स्वास्थ्यनीति का पालन किया जाए, तो दाँत निकलने के समय कोई भी विपत्ति नहीं आ पाती। इस समय यदि शरीर खराब हो, तो भी शरीर को पुनः स्वस्थ कर बच्चे को दाँत निकलने के समय के सभी सम्भव रोगों से मुक्त रखा जा सकता है।

इसलिए दाँत निकलने का समय समीप आते ही शिशु का पेट हमेशा साफ रखना चाहिए और प्रतिदिन यथेष्ट पानी पीने के लिए देना उचित है। इसके अतिरिक्त उसके खाद्य की ओर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है (इसके लिए दाँतों की स्वास्थ्यनीति देखिए)।

दाँत-दर्द

[Toothache]

दाँत-दर्द, दाँत और मसूड़ों आदि के विभिन्न रोगों का एक साधारण लक्षण होता है। इस में मामूली दर्द से असह्य वेदना होने लगती है और कभी-कभी तो यह वेदना लगातार या बार-बार होती है।

गरम और ठंडे पानी की कुल्ली ही दाँत-दर्द की रामबाण औषधि है। दाँत-दर्द होने पर यदि और कुछ नहीं किया जाए, तो केवल सिर धोकर एक मिनट गरम पानी की कुल्ली करने के बाद तुरन्त ही एक मिनट ठंडे पानी की कुल्ली एक समय में दो-तीन बार करने से ही दाँत-दर्द फौरन चला जाता है। गरम-ठण्डे की कुल्ली गरम से शुरू एवं ठण्डे में खत्म करनी चाहिए। दिन में दो-तीन बार गीली मिट्टी से दाँत घिसना भी नितान्त आवश्यक है।

किन्तु यदि पुराना दाँत-दर्द ठीक करना हो, तो इसके साथ ही साथ सारे शरीर की चिकित्सा (constitutional treatment) अर्थात् देहशोधनमूलक चिकित्सा भी करनी चाहिए।

इसका कारण यह है कि यदि शरीर खराब नहीं हुआ हो तो दाँत कभी भी खराब नहीं हो सकते। अतः के दाँत की चिकित्सा कर, दंत-रोग, विशेष कर दाँत का पुराना रोग स्थायी रूप से कभी भी ठीक नहीं किया जा सकता। दाँतों को यदि ठीक रखना हो और दंत-रोग को स्थायी रूप से दूर करना हो, तो आरम्भ से ही रोगी का शरीर स्वस्थ बना लेना चाहिए।

इसके लिए कुछ दिनों तक रोगी को नीम पत्ते का उबला पानी का डूस देना आवश्यक है और दिन में कम से कम एक बार दो घंटे के लिए पेट की लपेट का प्रयोग करना उचित है। स्नान से पहले सिर और मुंह को गीले गमछे से ढककर पाद-स्नान कराने से भी रोगी को बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। इसके बाद या इसके साथ ही साथ ऊपर बताए अनुसार दाँत की सामान्य चिकित्सा कुछ दिनों तक करने से दाँत-दर्द स्थायी रूप से चला जाता है।

रोगी मुंह से श्वास न ले, इसका ध्यान रखना चाहिए। मसूड़ों को स्वस्थ रखने के लिए नाक से श्वास लेना और छोड़ना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि बच्चे की नाक नीरोग न हो, तो उसकी नाक पर कुछ दिनों तक प्रतिदिन गरम-ठण्डे का प्रयोग करना चाहिए। कुछ दिनों तक इसके प्रयोग से ही नाक के कई दोष नष्ट हो जाते हैं और नाक अपने आप खुल जाती है।

दाँत सड़ना

[Caries of the Teeth

यह सभ्य समाज का एक अत्यन्त साधारण रोग है। बचपन तथा यौवन के प्रारम्भ में यह अधिक होता है। यह देखा गया है कि इंगलैंड में जितने छात्र विद्यालयों (स्कूलों) में जाते हैं, उनमें से ७० से ९० प्रतिशत के दाँत सड़ जाते हैं।

साधारणतः जो अपने दाँत साफ नहीं करते, उन्हें ही यह रोग होता है। खाद्य का कुछ अंश दाँतों की दरार में रह जाने से दरारों के भीतर कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं और वे एक प्रकार का एसिड पैदा करते हैं जो कि दाँतों की एनामेल (enamel) को नष्ट करता है।

किन्तु असभ्य समाज के लोगों में यह रोग नहीं देखा जाता। जो पशु-पक्षी आदि नंगे बदन ही खुली हवा में प्रकृति की गोद में अपना जीवन बिताते हैं, उन्हें दाँत-सड़ने रोग कभी भी नहीं होता। सभ्य समाज के जो लोग हमेशा ही कृत्रिम वातावरण के भीतर अधिक समय तक बंद कमरों में रहते हैं, कृत्रिम खाद्य खाते हैं, सूर्य के प्रकाश से जो बंचित रहते हैं, उन्हें ही साधारणतः दाँत सड़ने का रोग होता है। इस प्रकार अस्वाभाविक रूप से जीवन बिताने के परिणामस्वरूप ही जब शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का सञ्चय हो जाता है और उससे दाँतों पर आक्रमण होता है केवल तब ही रोग होता है। कई स्थितियों में तो खून का यह विष पेट से आता है।

इस रोग में सारी रात के लिए रोगी को पेट की लपेट का प्रयोग कराना चाहिए और टमाटर, अमरूद बेल आदि देशी फल खाने के लिए देना उचित है। बीच-बीच में नीम पत्ते का उबला पानी का डूस दिया जा सके, तो बहुत लाभ होता है। उसे नीबू का रस मिलाकर काफी पिलाना चाहिए। स्नान से पहले प्रतिदिन धूप-स्नान (sun-bath) कराना भी बिलकुल जरूरी है।

इसके साथ ही साथ रोगी को प्रतिदिन गरम-ठण्डा कुल्ला कराने

के बाद, एक मिनट ठण्डे पानी का कुल्ला कराना पड़ता है। एक बार में ऐसा दो-तीन बार कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त ताजी मिट्टी से दिन में दो बार दंत मंजन अवश्य ही कराना जरूरी है।

रोगी के पथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए दाँतों की स्वास्थ्यनीति देखिए।

पन्द्रह

गल-रोग

गले का दर्द

[Throat Pain]

गले का दर्द एक प्रकार का साधारण सामयिक रोग है। साधारणतः ठण्ड लग जाने के कारण गले में दर्द होता है। एक घण्टे से डेढ़ घण्टे के लिए गले की पट्टी देने से ही दर्द निश्चित रूप से चला जाता है।

गला बैठ जाना

[Hoarseness]

कई बार तो ठण्ड लग जाने के कारण ही बच्चों का गला बैठ जाता है। एक से डेढ़ घण्टे के लिए गले की पट्टी देने से ही यह

चला जाता है। यदि इसके साथ ही साथ सर्दी भी हो, तो गले की पट्टी के साथ ही साथ छाती की लपेट भी देनी चाहिए। ऐसा करने के बाद भी यदि ठंड-सी लगती हो, तो छाती की लपेट से भी पहले पन्द्रह मिनट के लिए पाद-स्नान कराना चाहिए। रात को सोते समय कुछ दिनों तक एक रूमाल गले में बाँध रखना आवश्यक है।

टान्सिल का सूजन

[Tonsilitis]

गले और मुँह के सन्धि-स्थल पर बादाम-जैसी जो दो ग्रन्थियाँ हैं उन्हें टान्सिल कहते हैं। कभी-कभी इनमें से एक या दो में सूजन उत्पन्न हो जाता है। तब उसे टान्सिल का सूजन कहा जाता है।

साधारणतः यह पहले नए रोग के रूप में प्रकट होता है और बाद में पुराने सूजन के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

अन्य रोग जिस प्रकार शरीर में दूषित पदार्थों के सञ्चय के कारण उत्पन्न होते हैं, टान्सिल का पुराना सूजन भी उसी प्रकार उत्पन्न हो सकता है। शरीर में संचित विष का जब टान्सिल पर आक्रमण होता हैं, तब ही यह रोग होता है। कई स्थितियों में, तो पेट की खराबी के कारण ही यह रोग होता है।

पहले टान्सिल का सूजन होने पर दोनों ही टान्सिलों को हमेशा के लिए काट दिया जाता था। किन्तु अब इस मत में बहुत परिवर्तन हो गया है। शरीर के लिए दोनों टान्सिलों का कोई उपयोग नहीं

है, यह विचार एक भूल है। भगवान बिना आवश्यकता के किसी भी अंग की सृष्टि नहीं करता। टान्सिल निकाल देने के कारण, कई स्थितियों में तो, मोटापन जैसे विभिन्न रोग हो जाते हैं। टान्सिल का आपरेशन भी हमेशा बिना किसी खतरे के हो जाता हो, ऐसी बात भी नहीं है। इसके अतिरिक्त टान्सिल निकाल देने से कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। उसका परिणाम केवल यही होता है कि शरीर में संचित विष एक दुर्बल अंग को छोड़कर किसी दूसरे दुर्बल अंग पर आक्रमण करता है।

किन्तु टान्सिल में सूजन आ जाने पर बिना चिकित्सा के रोगी को नहीं रखना चाहिए। टान्सिल के भीतर यदि पीब पड़ जाए, तो वह पेट में पहुँचकर विभिन्न रोग उत्पन्न कर सकता है। शरीर की खराब अवस्था जिस प्रकार दोनों टान्सिलों में सूजन पैदा करती है, उसी प्रकार प्रदाहयुक्त टान्सिल भी शरीर की स्थिति खराब कर सकते हैं।

इसलिए टान्सिल बढ़ने पर शुरू में ही शरीर को दोषमुक्त कर लेना आवश्यक है। नए सूजन में सबसे पहले यह आवश्यक है कि नीम के पत्ते उबले पानी से पेट साफ कर लिया जाए और जब तक सूजन कम नहीं हो जाए, तब तक प्रतिदिन डूस दिया जाए। इसके बाद रोगी को पन्द्रह मिनट के लिए एक पाद-स्नान कराके सारे शरीर पर घर्षण-स्नान प्रयोग करना चाहिए। रोगी का सिर दिन में तीन बार धोकर सारा शरीर गीले गमछे से पोंछ देना भी आवश्यक है। टान्सिल में यदि दर्द हो और रोगी को बुखार हो तो गले की पट्टी को हर पन्द्रह मिनट के बाद बदल देना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े

समय में ही सूजा हुआ टान्सिल स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है।

टान्सिल के पुराने सूजन में भी प्रतिदिन पाद-स्नान और पेट की लपेट देकर तथा नीबू का रस मिला काफी पानी मिलाकर आरम्भ में ही शरीर को विषमुक्त कर लेना चाहिए। इसके साथ ही दिन में दो बार, उसके टान्सिल पर बाहर से गरम-ठंडे का प्रयोग करना आवश्यक है। तीन मिनट के लिए गले के ऊपर की ओर गरम सेंक करने के बाद इस स्थान को ठंडा कर लेना आवश्यक है और ऐसा एक साथ तीन बार करना चाहिए। उसके बाद रोगी को गले की पट्टी का प्रयोग कराना चाहिए।

रोगी को प्रतिदिन फल, फल का रस, सलाद, उबली तरकारी, तरकारी की यूष, शहद मिला पानी और काड-लिवर आइल देना चाहिए।

सोलह

प्राकृतिक चिकित्सा का जादू

बच्चों को रोग जितनी आसानी से होते हैं, उतनी ही आसानी से वे ठीक भी हो जाते हैं। बहुत मामूली प्राकृतिक चिकित्सा करने से बच्चों के कठिन रोग भी बहुत जल्दी ठीक किए जा सकते हैं। औषधि से जितने समय में रोग दूर होते हैं, उनसे बहुत ही कम समय में प्राकृतिक चिकित्सा से रोग ठीक हो जाते हैं।

अजीर्ण

एक लड़की जिसका नाम है कुमारी दुर्गा, आयु तीन साल, चार माह से कठिन अजीर्ण रोग भोग रही थी। उसके पिता ३, मुंशी सदरुद्दीन लेन में रहते थे। चार महीने के भीतर उन्होंने उसकी कई प्रकार की चिकित्सा कराई। किन्तु कोई फल नहीं निकला। बच्ची दिन पर दिन सूखने लगी। अन्त में उसकी ऐसी अवस्था हो गई कि यदि वह भात खाती, तो भात भी वैसा का वैसा ही मल के रास्ते बाहर निकल आता था। मैंने उसे प्रतिदिन पेट पर गरम-ठंडा, नीबू का रस मिलाकर गुलगुने जल से डूस और कमर की गीली लपेट तीन-चार दिन दी और इनसे ही उसका रोग ठीक हो गया। पेट के जितने भी रोग हैं, उनमें पेट पर गरम-ठंडा और पेट की लपेट इस प्रकार आश्चर्यजनक फल बताती है।

दुलपित्ती

स्वपन नामक सात वर्ष का एक लड़का ३, शिवठाकुर गली में रहता था। वह दो वर्षों से दुलपित्ती से पीड़ित था। उसके सारे शरीर में प्रायः ही चकते पड़कर दुलपिती उठती थी और वह असह्य खुजलाहट की जलन के कारण अस्थिर हो जाता था। उसके एक रिश्तेदार उसे मेरे पास ले आए। मैंने उसे डूस के बाद आठ मिनट

के लिए भाप-स्नान की व्यवस्था कर दी। और उसके बाद उसे घर्षण-स्नान कराया गया। केवल एक दिन की इस सामान्य चिकित्सा से ही उसकी दुलपित्ती हमेशा के लिए चली गई।

सारे शरीर में फफोले के घाव

कुमारी मुन्नी टाँटिया करोड़पति व्यापारी की लड़की। उसके पिता श्रीमदनलालजी टाँटिया का प्राकृतिक चिकित्सा पर अटूट विश्वास है। लड़की की आयु केवल तीन साल। एक बार गर्मियों में उसके सारे शरीर में अकस्मात् पानी भरे बड़े-बड़े फफोले पड़ गए। उसके पिता ने भय खाकर मुझे बुलाया। मैंने उसके फफोलों को नहीं फोड़कर सूई से पानी बाहर निकाल देने के लिए कहा। इस अवस्था में फफोलों पर मिट्टी का प्रयोग ही प्रमुख चिकित्सा है। किन्तु फफोले कहीं छाती पर, तो कहीं कन्धे पर, या मुंह में तथा इसी भाँति शरीर के अन्य स्थानों में पड़ गए थे। अतः उन स्थानों पर मिट्टी का प्रयोग करने की सुविधा नहीं थी। इस कारण रोगी के तलपेट पर दिन में तीन बार पन्द्रह मिनट के लिए मिट्टी रखने की व्यवस्था मुख्यतः की गई। मुख्य-मुख्य फफोलों पर भी मिट्टी का प्रयोग किया गया। इसके साथ ही साथ रोगी को प्रतिदिन नीम के पत्ते से उबला पानी का डूस दिया गया और दिन में तीन बार उसका सिर धोकर सारे शरीर को गीले गमछे से पोंछा गया। तीन दिन तक उसे केवल फल का रस ही खाने के लिए दिया गया। इन तीन दिनों

में ही फफोले सूखकर काले पड़ गए और उसके बाद शरीर पर घाव का कोई भी चिह्न शेष नहीं रहा।

टाइफायड

महाबीर प्रसाद जैन, आयु दस साल। उसे एक बार टाइफायड हुआ। लड़के के पिता ६२, नलिनी शेठ रोड पर रहते हैं। लड़का जन्म से ही दुर्बल था। उसके बाद टाइफायड से एकदम सूख गया। वह अपने पिता का इकलौता बेटा है। उसके पिता पुत्र के कारण बहुत अशांतचित्त रहा करते थे। किन्तु इस परिवार की प्राकृतिक चिकित्सा पर विशेष रूप से श्रद्धा है। उनके यहाँ प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़ और कोई चिकित्सा नहीं होती। तीन-चार दिनों के बुखार के बाद जब यह मालूम पड़ा कि बुखार मामूली नहीं है बल्कि टायफाइड है, तब उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की। उनके लिए एक अच्छे पुरुष-नर्स की व्यवस्था मैंने कर दी। आरम्भ में ही उसे एक डूस प्रतिदिन देने की व्यवस्था की गई। डूस से पहले उसके पेट पर थोड़े समय के लिए ठण्डा-गरम दिया गया।

पेट पर गरम-ठण्डा या ठण्डा-गरम देने से ऊपर संचित मल नीचे उतर आता है और इस रोग में पेट में जो विष उत्पन्न होता है वह शरीर में शोषित नहीं हो पाता तथा डूस के पानी के साथ बाहर निकल आता है। छोटे बच्चों और बालकों को डूस देने से लोग डरते हैं। किन्तु इससे जरा भी हानि नहीं होती। जिसका पेट में

रहना उचित नहीं होता, केवल उसे ही लेकर डूस का पानी बाहर निकल आता है।

इस रोग में मृत्यु का कारण शरीर में संचित विष का देह में शोषित होना है। जिस समय शरीर के प्रमुख विषकुण्ड को डूस देकर प्रतिदिन साफ कर दिया जाता है, उस समय खराब अवस्था से रोगी की मृत्यु हो सकना भी कठिन हो जाता है। इसके साथ ही साथ रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी प्रतिदिन पिलाया गया। उसे थोड़ा-थोड़ा करके सारे दिन बार-बार पानी दिया गया। इसके बाद दिन में दो बार प्रतिदिन घर्षण-स्नान (cold friction) का प्रयोग करने की व्यवस्था की गई। घर्षण-स्नान से केवल लोमकूप खुल जाते हों, ऐसी बात ही नहीं है, सभी प्रकार के बुखारों को ठीक करने के लिए इसके समान चिकित्सा पृथ्वी पर और दूसरी नहीं है। घर्षण–स्नान के पहले शरीर को साधारणतः कुछ गरम कर लेना आवश्यक है। किन्तु टाइफायड में लगातार बुखार होने पर उसे किसी भी प्रकार का गरम-स्नान नहीं दिया गया। बुखार में किसी भी प्रकार का गरम-स्नान भी नहीं कराना चाहिए। यदि गरम स्नान कराया गया तो बुखार बढ़ जाता है। किन्तु गरम स्नान (hot bath) के बदले में दिन में दो बार एक घंटे के लिए उसके अलग-अलग पाँवों में पैर की लपेट दी गई। निश्चित समय के बाद पैर की लपेट खोलकर घर्षण-स्नान का प्रयोग कराया गया। इस सारी चिकित्सा के अतिरिक्त उसके पेड़ू पर दिन में दो बार २० मिनट के लिए मिट्टी की पट्टी रखने की व्यवस्था की गई थी। कुछ दिनों बाद जब बुखार कम हो गया, तब दिन में तीन बार पेट पर गीले कपड़े

की लपेट तौलिए से ढककर दी गई। पेट पर का गीला कपड़ा गरम होते ही पहले उसे उलटा करके रखा गया और बाद में उसे धोकर फिर काम में लाया गया। उसके सिर को भी दिन में तीन बार धोकर सारे शरीर को गीले गमछे से पोंछा गया।

इस बच्चे को पथ्य में मौसम्बी का रस, मट्ठा, डेक्स्ट्रोसोल (Dextrosol), छने का पानी, तथा नीबू का रस मिला पानी दिया गया। इसके अतिरिक्त साबूदाना, बार्ली, दूध आदि कुछ भी उसे नहीं दिए गए। इस क्षीणजीवन, कंकाल-मात्र लड़के के बचने की कुछ भी आशा नहीं थी। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि एक माह तक इस पथ्यहीन पथ्य पर रखने के बाद जो उसका चेहरा देखते थे वे यह नहीं समझ पाते थे कि वह एक माह तक बीमार रह चुका है। प्राकृतिक चिकित्सा से शरीर में संचित समस्त दूषित पदार्थ बाहर हो जाने पर प्रयत्न करने पर भी यह समझ में नहीं आता कि उसे कोई रोग हुआ था। वास्तव में, इस चिकित्सा के बाद रोगी का स्वास्थ्य हमेशा ही सुधरता जाता है। तीस दिन के बाद जब उसका बुखार उतरा और उसे खाने को दिया गया, तब दिन पर दिन उसका शरीर अच्छा होता गया और अन्त में उसका स्वास्थ्य बहुत सुधर गया।

कृमि

१८, एमहर्स्ट स्ट्रीट निवासी केजड़ीवाल, आयु आठ साल। बचपन से ही कृमि के कारण असह्य कष्ट भोग रहा था। उसकी कई प्रकार

चिकित्सा की गई थी। किन्तु उसके पेट की कुछ ऐसी स्थिति हो गई थी कि कुछ कृमियों को बाहर निकाल देने पर फिर से कृमि उसके पेट में अपना अड्डा जमा लेते थे। अन्त में उसके पिताजी ने मेरी देखरेख में प्राकृतिक चिकित्सा प्रारम्भ की। मैंने शुरू में ही उसके लिए पथ्य की नई व्यवस्था की। उसको सभी प्रकार के क्षारधर्मी फल और दही मुख्य रूप से खिलाने की व्यवस्था की गई। टमाटर, कमला नीबू, बिजौरा, अनन्नास आदि फल वह सारे दिन में तीन बार लेता था तथा केवल एक बार बिना घी की रोटी उबली तरकारी के साथ खाता था। इसके साथ ही साथ लड़के के पेट पर गरम-ठण्डा देकर शहद-सहित डूस और सारी रात के लिए पेट की लपेट देने की व्यवस्था भी की गई। शायद कृमि खट्टे खाद्य-पदार्थों में अधिक दिनों तक टिक नहीं सके। वे धीरे-धीरे पेड़ू में आकर इकट्ठा होने लगे। शायद शहद के लोभ से वे तलपेट में आने लगे और दो-तीन दिनों के बाद प्रायः ही डूस के पानी के साथ दो-दो तीन-तीन कर बाहर निकलने लगे। यह चिकित्सा १५ दिनों तक चली। इस बीच में उसके बहुत-से कृमि बाहर निकल गये थे। रोगी को देखने के लिए मुझे प्रायः ही उसके घर जाना पड़ता था। एक दिन जब मैं उसके घर गया तो वह मुझसे बोला, "देखिए, आज मेरे पेट से कृमियों का राजा निकल गया है।" उस दिन इतना बड़ा ही एक कृमि बाहर निकला था। इसके दो दिन बाद उसने फिर मुझसे कहा, उस दिन जो कृमि निकला था, राजा नहीं, सेनापति था। राजा तो आज निकला है। उसके दो दिन बाद जब एक और बड़ी कृमि बाहर निकला, तब लड़के ने कहा यह कृमि की रानी है। इसके बाद भी

उसकी पन्द्रह दिनों तक और चिकित्सा चली थी किन्तु उसके बाद एक भी कृमि नहीं निकला। बाद में, वह पूरी तरह ठीक हो गया।

बचपन का लकवा

२१ ए, दमदम रोड निवासी श्रीसुकुमार बंद्योपाध्याय एक उन्नतिशील व्यापारी हैं। उनके एक लड़के को बुखार आया। समाचार पाने पर उनके एक पारिवारिक डाक्टर ने आकर रोगी को देखा। किन्तु प्रथम अवस्था में बुखार देखकर यह कौन-सा ज्वर है यह निर्णय कर सकना हमेशा ही सम्भव नहीं होता। इसके बाद अकस्मात् एकदिन उस लड़के के आधे शरीर में लकवा मार गया। श्री बंद्योपाध्याय बहुत चिन्तित हो गए और उन्होंने कई डाक्टरों को बुलाया। किन्तु किसी भी चिकित्सा में कोई परिणाम नहीं निकला तब प्राकृतिक चिकित्सा कराने के लिए मुझे बुलाया गया। मैंने जाते ही पूछा, बुखार के समय बच्चे के मेरुदंड में कहीं किसी स्थान पर दर्द हुआ था अथवा नहीं। बच्चे के माँ मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाई। उसने कहा, "सो तो नहीं बता सकती; बुखार के कुछ दिनों बाद से उसे मैं गोद में नहीं ले पाती थी। गोद में लेते ही वह रोता था।"

इस प्रकार की स्थिति में परिवार के लोग यह सोचते हैं कि डाक्टर की औषधि या इन्जेक्शन के कारण ही ऐसा हो गया है। किन्तु मैंने उन्हें समझाकर बताया कि यह एक प्रकार का संक्रामक

रोग है और तुरन्त ही चिकित्सा की व्यवस्था कर दी। बच्चे को प्रतिदिन डूस, सारे शरीर की मालिश, मेरुदंड पर दिन में दो बार गरम-ठण्डा और उसके बाद घर्षण-स्नान कराने के लिए मैंने उनसे कहा। उसके मेरुडंड पर निचोई हुई जलपट्टी देकर तथा इस पट्टी को फ्लानेल से ढके रखकर एक घंटे के अन्तर से बदलते रहने की हिदायत भी उन्हें दी गई थी। इस परिवारवालों के अनेक कठिन रोग इससे पहले प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो चुके थे। फलस्वरूप घर की सभी बहू-बेटियाँ चिकित्सा के प्रयोग के सम्बन्ध में जानकारी रखती थीं। मेरी हिदायत के अनुसार उन्होंने ही चिकित्सा सम्बन्धी सारा कार्य-ठीक-ठीक किया। भाग्य से बुखार उतर जाने के ठीक इक्कीस दिनों के भीतर ही चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गई थी। चिकित्सा से बच्चे की चलने की शक्ति दिन पर दिन लौटने लगी और एक माह के भीतर ही वह अच्छा हो गया।

शैशवकालीन लकवा एक अत्यन्त कठिन रोग है। इसको ठीक कर लेना आसान काम नहीं है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा से इस प्रकार की कठिन व्याधि भी अपने ही प्रयत्न से ठीक हो सकती हैं। इस प्रकार के सभी रोग प्राकृतिक पद्धति के अनुसार अपने ही प्रयत्न से ठीक हो जाते हैं। हर समय और हर स्थान में उपयुक्त चिकित्सक की सहायता नहीं मिल पाती। यदि मिल भी सके, तो भी हमारा देश इतना गरीब है कि सभी लोग डाक्टर को नहीं बुला सकते। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा का यदि थोड़ा भी ज्ञान हो, तो एक भी पैसा खर्च नहीं करते हुए जीवन-रक्षा की जा सकती है। यह चिकित्सा जितनी आसान है उतनी ही निरापद भी है। इसीलिए घर-घर में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार होना चाहिए।

शैशवकालीन तिल्ली

[Infantile liver]

रतनलाल नामक दो वर्ष का एक लड़का १, मछुआबाजार स्ट्रीट में अपने पिता के साथ रहता था। उसे शैशवकालीन तिल्ली हुई। उसकी तिल्ली बहुत बढ़ गई और धीरे-धीरे सारे पेट पर उसने अपना अधिकार जमा लिया। लड़के के पिता गरीब आदमी थे। अपने सामर्थ्य के अनुसार उन्होंने विभिन्न चिकित्साएँ करवाई। किन्तु उनसे कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में इस प्रकार के रोगों में जैसा होता है, वैसा ही हुआ। उसके पेट में पानी भर गया। तब किसी के द्वारा सलाह दिए जाने पर, उसके पिता उस बच्चे को मेरे पास लाए। साधारणतः प्राकृतिक चिकित्सा से तिल्ली के विभिन्न रोग बहुत आसानी से ठीक हो जाते हैं। जब मलेरिया जैसे रोग में तिल्ली या प्लीहा बढ़ जाती है, तब ऐसी अवस्था में तिल्ली पर सात-आठ दिन गरम-ठंडा देने से ही तिल्ली या प्लीहा अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाता हैं। इसके साथ ही पेट की लपेट अवश्य ही चलाना चाहिए तथा कुछ दिनों तक प्रतिदिन डूस देना चाहिए और पथ्य से परहेज रखना उचित है। क्योंकि तिल्ली को ठीक कर लेने का मुख्य उपाय रक्तशुद्धि कर लेना ही है।

जब यह दिखाई दे कि बच्चे की तिल्ली बढ़ रही है, तो कुछ दिनों तक इसी प्रकार की चिकित्सा चलानी चाहिए। तिल्ली से यदि बहुत अधिक खतरे की सम्भावना बढ़ गई हो, तो वह भी कुछ दिनों की चिकित्सा से ही दूर हो जाती है।

इस बच्चे की भी सारे शरीर की चिकित्सा (ccnstitutional treatment) के साथ ही साथ स्थानीय चिकित्सा (local treatment) शुरू से ही प्रारंभ की गई। उसे सारे शरीर की मालिश, तिल्ली पर गरम-ठंडा, नीबू का रस मिलाकर हलके गरम पानी का डूस, धूप-स्नान (sun-bath), घर्षण-स्नान और एक घटे के अन्तर से बदल-बदलकर पेट की लपेट बार-बार दी गई। इस लड़के को केवल कमला नीबू और मौसम्बी जैसे फलों का रस, शहद मिला पानी, मक्खन निकला हुआ मट्ठा तथा किशमिश का पानी पिलाकर रखा गया। उसे विभिन्न हरी सब्जियों का यूष भी दिया गया। किन्तु उसमें नमक नहीं मिलाया गया। इस चिकित्सा से बच्चा थोड़े दिनों में ही अच्छा हो गया।

बच्चों की तिल्ली बढ़ने का रोग (infantile liver) आसान से ठीक नहीं होता। जिन अभागे माता-पिता की संतान को यह रोग होता है, वे रोगमुक्त की झूठी आशा से चिकित्सक के बाद चिकित्सक बदलते हैं और एक चिकित्सा-पद्धति (पैथी) के बाद दूसरी चिकित्सा-पद्धति का आश्रय लेते हैं और अन्त में अपनी कमाई खर्च कर तथा अपने प्यारे पुत्र को श्मशान में बिदा देकर वापस घर आ जाते हैं। किन्तु यदि शुरू में ही यह चिकित्सा चलाई जाए, तो एक भी पैसा खर्च किए बिना बच्चे को बचाया जा सकता है तथा, तिल्ली खराब होते ही चिकित्सा शुरू कर देने से रोग की इस प्रकार परिणति होना ही असंभव हो जाता है।

सत्रह

प्रयोग विधि

शिशु की संभाल देवपूजा के समान निष्ठापूर्वक करनी चाहिए। देवपूजा की विधि जिस प्रकार निर्दोष होना आवश्यक है, बच्चे की संभाल भी उसी प्रकार दोषरहित होना जरूरी है। केवल बच्चों के मामले में ही नहीं अपितु प्राकृतिक चिकित्सा की सफलता ही त्रुटि-रहित उपचार पर निर्भर करती है। शैशवकालीन स्वास्थ्यनीति का ठीक-ठीक अनुसरण करके ही थोड़ी-सी चिकित्सा के द्वारा शैशवकाल के सभी रोग ठीक किए जा सकते हैं और यदि शरीर स्वस्थ हो, तो बच्चे के शरीर को बना लिया जा सकता है। नीचे वर्णक्रम से विभिन्न उपचार, उनकी प्रयोग विधि और लाभ दिए गए हैं:—

उष्ण पाद-स्नान (hot foot-bath)—दोनों पैरों को गरम पानी में डुबोकर गरम पानी के बर्तन सहित गले तक कम्बल से ढककर बैठने का नाम उष्ण पाद-स्नान है। पैरों को पानी में डुबोने से पहले सिर को धोकर एक गीले तौलिए से ढक लेना आवश्यक है। इससे शरीर गरम हो उठता है और लोमकूपों के रास्ते शरीर का यथेष्ट दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है। सभी समय इससे पसीना निकालने का उद्देश्य नहीं होता। बच्चे का शरीर यदि ठंडा हो, तो उष्ण पाद-स्नान करा देने से या घर्षण-स्नान (cold friction) आदि

का प्रयोग करने से उसे बहुत लाभ होता है। उसके दोनों पैर चार से छः इञ्च जल में डुबाना ही यथेष्ट होता है। आवश्यकता के अनुसार यह छः से पन्द्रह मिनट तक प्रयोग कराया जा सकता है। बच्चे को स्नान करा देने के बाद, उसके सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ देना चाहिए या उसे घर्षण-स्नान या साधारण स्नान कराया जाए।

कटि-स्नान (hip-bath)—पानी से भरे हुए एक टब के भीतर बच्चे को पैर बाहर रखकर नाभि तक जल में बैठाकर उसके तलपेट और कूल्हे (hip) को लगातार रगड़ने से ही कटि-स्नान हो जाता है। यह स्नान पहले केवल एक मिनट के लिए देकर धीरे-धीरे समय बढ़ाकर अंत में दस मिनट के लिए दिया जा सकता है। जब शरीर गरम हो, तब ही इसका प्रयोग करना आवश्यक है और उसके बाद मालिश आदि के द्वारा शरीर को पुनः गरम कर लेना चाहिए। ऐसा करने से ही कटि-स्नान से लाभ होता है, अन्यथा करने से नहीं। इस स्नान से पेट साफ़ होता है, परिपाक शक्ति में वृद्धि होती है और सारे शरीर में ही यह फुर्ती ला देता है।

गरम-ठंडा (alternate compress)—शरीर के किसी भी स्थान पर दस सेकंड से दो मिनट तक सेंक देकर उसके तुरन्त बाद ही उस स्थान को ठंडे पानी में भिगोए गए गमछे से भली प्रकार ठंडा कर लेने से ही गरम-ठंडे का प्रयोग हो जाता है। गरम प्रयोग के तुरंत बाद ही ठण्डे का प्रयोग करना आवश्यक है। यदि शरीर ठंडा हो, तो इसे हमेशा ही गरम से प्रारम्भ करना चाहिए और यदि शरीर गरम हो, तो ठंडे से। ठंडे से आरम्भ करने पर इसे ठंडी-गरम

पट्टी कहते हैं। शरीर के किसी भी अंग को नीरोग करने के लिए पारी-पारी से दिए जानेवाले ठंडे और गरम प्रयोग के समान और कुछ भी नहीं है। किसी भी अंग पर गरमी का प्रयोग करने से, खून उस स्थान पर शरीर-गठन का मसाला और कीटाणुओं के साथ युद्ध करने के लिए रक्त के नए श्वेत कण (white corpuscles) ले आता है। फिर ठण्डे के प्रयोग से रक्तवाही नलियाँ संकुचित होती हैं। उस समय रक्त इस स्थान के दूषित और विषाक्त पदार्थों को लेकर चला जाता है तथा शरीर की गंदगी निकालने के विभिन्न मार्गों से उसे बाहर निकाल देता है। इस प्रकार किसी भी अंग पर गरम-ठण्डा देने से उस अंग के लिए एक प्रकार का पम्प का काम होता है। इस कारण थोड़े समय में ही अंग निर्दोष हो जाता है।

गले की लपेट (throat pack)—गले के चारों ओर एक गीले कपड़े को दो-तीन बार लपेट कर उस पर एक गुलबंद (मफलर) या गरम कपड़ा इस प्रकार लपेटना आवश्यक है कि उसमें हवा नहीं जाने पाए तथा रक्त-सञ्चार में भी कोई बाधा नहीं आए। इस लपेट के भीतर कुछ गरमी उत्पन्न होना आवश्यक है। प्रयोग से पहले गीले कपड़े को बिलकुल निचोड़ लेना चाहिए।

गीले कपड़े की लपेट (wet-sheet pack)—एक गीले कपड़े से रोगी के शरीर को गले से पैरों तक ढककर उसके बाद दो कंबलों से ढक देने से ही यह लपेट हो जाती है। लपेट खुलने के बाद रोगी को सारे शरीर को गरम पानी में भिगोए गए तौलिए से पोंछ देना चाहिए। इसका लाभ कुछ अंशों में भाप-स्नान के समान होता है।

गीली चादर की ठण्डी लपेट (the cooling wet-sheet pack)—यदि रोगी के शरीर का ताप अत्यधिक बढ़ जाए, तो एक कंबल पर धोती का एक टुकड़ा बिछाकर उससे रोगी के गले तक सारा शरीर इस प्रकार ढक देना पड़ता है कि शरीर का प्रत्येक स्थान गीले कपड़े के सम्पर्क में आ जाए। रोगी के शरीर की गरमी जितनी ही अधिक हो, गीला कपड़ा भी उतना ही मोटा होना चाहिए। उसके बाद कंबल से रोगी को ढककर कंबल के ऊपर ही रोगी के सारे शरीर की हलकी मालिश की जाती है। कुछ ही क्षणों में कपड़ा गरम हो उठता है। ऐसे समय कंबल हटाकर चादर और शरीर पर हवा कर चादर तथा शरीर को ठण्डा कर, उसी समय फिर से रोगी को कंबल से ढक दिया जाता है। तेज बुखार में यह लपेट पाँच से सात मिनट के लिए एक साथ तीन-चार बार दी जा सकती है। इस लपेट का प्रयोग कर इच्छानुसार बुखार कम कर लिया जाता है।

छाती की लपेट (chest pack)—एक लम्बा गीला कपड़ा शरीर की गरमी के अनुसार, एक से दो परत कर दोनों कन्धों और पीठ के चारों ओर घुमाकर मोटे फ्लानेल या अलवान से अच्छी तरह ढककर बाँध देने से ही छाती की लपेट हो जाती है। गीले कपड़े को खूब अच्छी तरह निचोड़ लेना आवश्यक है।

ठंडा-गरम—गरम-ठण्डा देखिए।

घर्षण-स्नान (cold friction)—परत किए हुए एक गीले गमछे (तौलिए से नहीं) से दाहिने हाथ को ढककर तथा गमछे के शेष भाग को बाएँ हाथ से मजबूत पकड़कर दाहिने हाथ से रोगी के

शरीर को रगड़ने से ही घर्षण-स्नान का प्रयोग हो जाता है। हाथ के सामने की ओर गमछा समतल रहना आवश्यक है। एक बार शरीर के एक हिस्से को इस प्रकार लाल और गरम कर लेने के बाद उसे ढककर शरीर के दूसरे भाग पर हाथ चलाया जाता है। घर्षण-स्नान शरीर गरम होने पर आरम्भ किया जाता है। यदि शरीर ठण्डा हो, तो धूप-स्नान या उष्ण पाद-स्नान अथवा गरम थैली आदि का प्रयोग कर शरीर को पहले गरम कर लेना चाहिए। मालिश के बाद में भी यह देखना आवश्यक है कि मालिश करते-करते शरीर गरम हो उठा है अथवा नहीं। मालिश समाप्त होने पर, यह स्थान ठण्डा हो गया हो, तो गरम पानी की बोतल आदि के द्वारा दो-चार सेकंडों के भीतर उसे पुनः गरम कर लेना आवश्यक है। सारे शरीर को चंगा कर लेने के लिए इसके समान दूसरा और कोई व्यवस्था नहीं है। यदि इसका ठीक रूपसे प्रतिदिन प्रयोग किया जा सके, तो मृतवत् रोगी भी नया जीवन प्राप्त कर सकता है।

डूस—बच्चे को हमेशा ही बहुत कम पानी का डूस देना चाहिए। साधारण कोष्ठबद्धता के लिए दूध पीते बच्चे को एक से दो औंस पानी का डूस देना ही काफी होता है। किन्तु अतिसार (डाइरिया), पेट-दर्द और अन्य किसी रोग में माता का दूध पीनेवाले बच्चे के लिए डूस में तीन से ६ औंस तक पानी का प्रयोग करना चाहिए। दो वर्ष के बच्चे को साधारण अवस्था में एक पाव जल दिया जा सकता है। उसके बाद बच्चा जितना ही बड़ा हो, उतना ही अधिक पानी देना चाहिए। किन्तु शिशु को बहुत अधिक जल डूस में कभी भी नहीं देना चाहिए। डूस का पानी साधारणतः ९८°

(रक्त की गरमी के समान) रखना उचित है। पानी में कुछ बूंद नीबू का रस हमेशा ही मिला देना चाहिए। नीबू का रस आँतों की मल निःसारक क्षमता में वृद्धि करता है तथा जिस दूषित परिस्थिति में कीटाणुओं की वृद्धि होती है, उस दूषित परिस्थिति को नष्ट कर डालता है (Sri William Howard Hay, M.D.—Health via Food, p. 219)।

अथवा डूस में नीम के पत्ते से उबाला पानी दिया जा सकता है। घाव, व्रण, खुजली और प्रदाहयुक्त रोगों में नीम के पत्ते से उबला पानी काम में लाने से घाव आदि में बहुत लाभ होता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आँतों की दूषित अवस्था ही अनेक रोगों को बनाए रखती है और जिस समय यह अवस्था नष्ट कर दी जाती है, उस समय रोगी की अवस्था सुधर जाती है। डूस देते समय डूस का वर्तन (can) दो फुट से अधिक ऊँचा नहीं रखना चाहिए। बच्चे को पीठ के बल सुलकर नितम्ब को कुछ ऊँचा कर डूस दिया जा सके तो बहुत अच्छा हो (Sir Robert Hutchinson, M.D., F.R.C.P.—Lectures on Diseases of Children, p. 90)। शिशु को इस प्रकार गोदी में लेकर भी अच्छी तरह डूस दिया जा सकता है। डूस देने के समय उसे गरम कपड़े से कमर से गले तक इस प्रकार भली-भाँति ढके रखना आवश्यक है कि उसे ठण्ड नहीं लगने पाए। उसके दोनों पैरों को भी अलग-अलग रखना चाहिए। विशेष आवश्यकता होने पर ही बच्चे को डूस देना उचित है अन्यथा नहीं। किन्तु आवश्यकता होने पर उसे सुबह-शाम भी डूस दिया जा सकता है तथा जितने दिनों तक आवश्यक हो, उतने

दिनों तक दिया जा सकता है (Sir James Frederick Goodhart, M.D., F.R.C.P.—The Diseases of Children, p. 100) ।

ढकी हुई लपेट (heating compress)—जिस समय गीला कपड़ा अनावृत (बिना ढका) अवस्था में शरीर पर रखा जाता है, तब उसे गीली लपेट (cold Compress) कहते हैं । जब वह गरम कपड़े (flannel) से इस प्रकार ढक दिया जाता है कि उसके भीतर कुछ गरमी उत्पन्न हो जाती है, तब उसे उसे ढकी हुई लपेट कहा जाता है । इसी प्रकार मिट्टी को पट्टी का भी प्रयोग किया जा सकता है । ठंडी लपेट से साधारणतः प्रदाह और ताप नष्ट होते हैं किन्तु ढकी हुई लपेट शरीर में इकट्ठा विष को खींच लाती है ।

तौलिया-स्नान (sponge-bath)—स्वस्थ व्यक्तियों और रोगियों सभी के लिए स्नान आवश्यक है । रोग की स्थिति में जिस समय पूर्णस्नान संभव नहीं होता, उस समय तौलिया-स्नान किया जा सकता है । पहले रोगी का सिर, मुंह, और कंधे अच्छी तरह ठंडे पानी से धोकर गले तक कम्बल से ढकी हुई अवस्था में रोगी को बिछौने पर सुला देना होता है । उसके बाद हर बार रोगी के शरीर का एक भाग अनावृत कर उस स्थान को ठंडे पानी में भिगोए गए तौलिए से ५ सेकंड तक पोंछकर अंत में ५ सेकंड तक उस स्थान को खाली हाथ से रगड़ देना आवश्यक है । तत्पश्चात् ५ से १० सेकंड समय तक दूसरे सूखे तौलिए से इस स्थान को पोंछकर अन्त में उस भाग को कम्बल से ढक देने के बाद, फिर शरीर के दूसरे भाग को

इसी प्रकार पोंछा जाता है। किसी भी रोग में इसका दिन में तीन बार प्रयोग करना चाहिए। इससे शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है और शरीर में रोग ठीक होने के अनुकूल अवस्था निर्मित होती है।

धूप-स्नान (Sun-bath)—पहले सिर धोकर और सिर तथा मुंह को छाया में रखकर टोपी आदि से उन्हें ढककर धूप-स्नान कराया जाता है। पहले दिन ही शिशु को लंबे समय तक सूर्य की रोशनी में रखना ठीक नहीं है। उसे धीरे-धीरे धूप सहने का अभ्यास डालना आवश्यक है। धूप-स्नान कराने के बाद, गीले तौलिए से उसके शरीर को पोंछ देना चाहिए या स्नान करा देना चाहिए। धूप-स्नान से शरीर का प्रत्येक अंग और, मोटे तौर पर, सारा शरीर ही यथेष्ट उत्तेजना प्राप्त करता है। A Sun-bath dose not stop at the surface—radiant energy, penetrates the dody and stimulates the vital processes—सूर्य की किरणों का प्रभाव केवल चमड़ी पर ही नहीं पड़ता—उसका तेज चमड़ी को भेद कर शरीर के विभिन्न यंत्रों को चंगा कर देता है (Sir F. Truly King, C.M.G., M.B., B.S.—Feeding and Care of Baby, p. I3)।

पेट की लपेट (wet girdle)—एक गीला कपड़ा नाभि के चार अंगुल ऊपर से पेड़ू की आखिरी सीमा तक पीठ के चारों

तरफ एक से दो बार बांधने और फिर उसे फ्लानेल से अच्छी तरह मोटा कर ढक देने से ही यह लपेट हो जाती है। लपेट के नीचे कुछ गरमी आनी चाहिए; केवल तब ही लाभ होता है। यदि शिशु बहुत छोटा हो, तो गीले कपड़े को एक बार लपेटना ही काफी होता है या पीठ के चारों ओर न लपेटकर केवल पेट पर लपेटा जा सकता है। गीला कपड़ा बहुत पतला होना आवश्यक है। जिस समय पेट गरम हो, उस समय ही यह लपेट देनी चाहिए। ऐसा होने पर लपेट तुरंत ही गरम हो उठेगी। पेट यदि ठंडा हो, तो गरम पानी की बोतल आदि से पेट को गरम कर लेने के बाद लपेट का प्रयोग करना आवश्यक है। शिशु जिस समय बिस्तर में हो, उस समय लपेट का प्रयोग करने से लपेट से सबसे अधिक लाभ होता है। गीले कपड़े को प्रतिदिन साबुन से साफ करना चाहिए। पेट साफ करने, वायु और आँव नष्ट करने तथा पेट के विभिन्न अंगों में सबल तथा दोषरहित कर लेने में यह लपेट जादू के मंत्र की तरह काम करती है।

पैरों को लपेट (foot pack)— एक गीले और जलशून्य कपड़े को टखने (ankle) से लेकर जाँघों के जोड़ तक एक या दो बार लपेटकर कोई एक गरम कपड़ा उस पर अच्छी तरह लपेट देने से ही पैरों की लपेट का प्रयोग हो जाता है। इस समय पैर गरम रहने चाहिए। यदि पैर गरम न हों, तो गरम पानी की थैली या बोतल आदि से पैरों को गरम कर लेने के बाद, लपेट का प्रयोग करना चाहिए और आवश्यकता होने पर, बीच-बीच में पैरों पर गरम थैली

रखकर उन्हें गरम रखना आवश्यक है। यदि पैर ठण्ड हों तो, जाँघों के जोड़ से कूल्हे तक इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग करने से पहले सिर धो लेना चाहिए। सिर, गला, मेरुदंड, छाती, पेड़ू, और ऊपरी शरीर के किसी भी स्थान के रोग में इस लपेट से बहुत लाभ होता है। इसके प्रयोग से इन सभी अङ्गों का दूषित रक्त नीचे खींच आता है। फलस्वरूप इन सभी अङ्गों का रक्ताधिक्य अनायास ही नष्ट हो जाता है और रोगग्रस्त स्थान सहज ही हलका हो जाता है। इस लपेट के प्रयोग से रोग की तीव्रता भी काफी कम हो जाती है। रोग अपेक्षाकृत कम समय रह पाता है और प्रबल रोगों में जो कभी-कभी लकवा, अंधापन, बहरापन और मानसिक रोग आदि उत्पन्न होते हैं, वे कभी भी नहीं हो पाते (Otto Juettner, M D., Ph. D.—Physical Therapeutic Methods, p. 508)।

फुट बाथ—उष्ण पाद-स्नान देखिए।

भाप-स्नान (steam bath)—बेंत के आसनवाली एक कुर्सी पर रोगी को नंगे बदन बैठाकर तथा कुर्सी के नीचे खौलते हुए पानी की एक हंडिया रखकर रोगी के गले तक सारे शरीर और कुर्सी को कंबल से इस प्रकार ढकना आवश्यक है कि भाप बाहर नहीं जा सके। स्टोव या चूल्हे पर एक ही छेदवाली टीन की एक केटली रखकर रबर की नली की सहायता से उसके भीतर भाप छोड़कर बहुत

अच्छा भाप-स्नान कराया जा सकता है। भाप-स्नान से पहले पेट अवश्य ही साफ कर लेना चाहिए और सिर धो लेना आवश्यक है। इस स्नान का प्रयोग करते समय रोगी के सिर और हृदय पर गीला गमछा हमेशा ही रखना चाहिए तथा स्नान लेने के बाद सारे शरीर को गीले तौलिए से पोंछ लेना आवश्यक है। शरीर को दोषरहित करने के लिए इसके समान और दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मालिश (massage)—मालिश कई प्रकार की होती है। किन्तु बच्चों के लिए घर्षण (friction) ही काफी है। दोनों हाथों को शिशु के शरीर पर रखकर चमड़ी के ऊपर जोर देकर उसके सामने की ओर परिचालन करने से ही घर्षण हो जाता है। हाथों को हमेशा ही घुमा-घुमाकर परिचालित करना चाहिए। पृथ्वी जिस प्रकार घूमते-घूमते आगे बड़ती है, हाथों को भी उसी प्रकार घुमाते-घुमाते ऊपर की ओर लाया जाता है। घर्षण कभी भी बहुत जोर से नहीं करना चाहिए। किन्तु हाथों की गति तीव्र होना आवश्यक है। हाथों और पैरों को हमेशा ही नीचे से ऊपर की :ओर घर्षण करना आवश्यक है। पेट का घर्षण करते समय हाथों को पेट के नीचे दाहिनी ओर रखते हुए नाभि को केन्द्र बनाकर हाथों को घुमाते हुए मालिश करना चाहिए। बच्चों की मालिश हमेशा ही तेल लगाकर करना उचित है।

घर्षण के बाद ही दबाने (kneading) का स्थान है। दाबी देने का नाम ही दबाना है। यह कई प्रकार का होता है। हाथ

पैरों का दबाना भी इसी के अन्तर्गत आता है। किन्तु यदि इसे पद्धति के अनुसार करना हो, तो मांसपेशियां को दोनों हाथों की मुट्ठी में लेकर थोड़ा दबाना पड़ता है और उसके बाद उन्हें खींचकर फैलाने की चेष्टा की जाती है।

जोर से दबाते हुए मालिश (ringing) दबाने का ही एक विशेष अंग है। इसका प्रयोग दोनों हाथों से करना चाहिए। इसका प्रयोग करते समय मालिश करनेवाले के हाथ के दोनों अंगूठे रोगी के अंग के एक ओर और दूसरी अंगुलियाँ दूसरी ओर रहती हैं। उसके बाद एक हाथ को आगे ले जाकर एवं दूसरे हाथ को पीछे ले जाकर रोगी के हाथ, पैर और छाती आदि अंगों की साथ-साथ मालिश की जाती है। यह साधारणतः बगल या जाँघों के जोड़ से आरम्भ कर हाथ या पैर के जोड़ (joint) तक चलाई जाती है और उसके बाद हाथ या पैर के जोड़ से बगल या जाँघों के जोड़ तक चलाना आवश्यक है।

मालिश-चिकित्सा में कम्पन (vibration) का एक विशेष स्थान है। अंगुली, हथेली या पूरे हाथ से शरीर के विभिन्न स्थानों में कम्पन उत्पन्न किया जाता है। इस समय जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी हाथों को चलाना चाहिए। स्नायुओं को उत्तेजित करने में कम्पन विशेष रूप से सहायता करता है। विभिन्न अंदरूनी अंगों पर इसका प्रयोग करने से ये अंग विशेष रूप से चंगे हो उठते

हैं। इस कारण छाती, पेट, पाकस्थली, और यकृत (लीवर) आदि अंगों पर इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। रक्तशून्यता में हाथों और पैरों पर इसका प्रयोग करना आवश्यक है। ऐसा करने से अस्थि-मज्जा के भीतर रक्त उत्पादन व्यवस्था में सुधार होता है। पेट फूलने का भी यह एक श्रेष्ठ प्रतिषेवक है (Mary V. Lace—Massage and Medical Gymnastics, p. 29-3I)।

यह हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है कि मालिश हमेशा ही आरामप्रद होनी चाहिए तथा एक ही साथ विभिन्न प्रकार का मालिश का प्रयोग किया गया हो, तो प्रयोग के अन्त में थोड़े समय के लिए घर्षण अवश्य ही करना चाहिए।

मिट्टी की पुलटिस (earth compress)—पुलटिस की मिट्टी इस प्रकार की होना आवश्यक है कि उसका तीन भाग बालूपूर्ण और एक भाग चिकनी मिट्टी हो। यह पुलटिस छोटे बच्चों के लिए एक-चौथाई इंच मोटी और दस वर्ष से ऊपर के बालक-बालिकाओं के लिए आधी इंच मोटी होनी चाहिए। प्रयोग के समय मिट्टी मक्खन के समान कोमल रहे। मिट्टी यथासंभव साफ स्थान से लेना चाहिए और यदि वह घाव के ऊपर लगाई जाए, तो मिट्टी के किसी नए वर्तन में एक घंटा उबालकर ठण्डी होने के बाद प्रयोग में लाई जाए। इसका प्रयोग करने पर साधारणतः एक फ्लानेल को परत कर उससे ढककर बान्ध देना चाहिए। घाव पर एक घंटे से अधिक समय तक

इसका प्रयोग बिलकुल भी नहीं किया जाए क्योंकि यह घाव से यथेष्ट विष और गन्दगी खींच लेती है तथा एक घण्टे के भीतर घाव का विष जर्जरित हो उठता है। उससे अधिक समय तक रखने से वह और अधिक विष ग्रहण नहीं कर पाती है बल्कि वह विष देने लग जाती है। इसलिए घाव पर एक घण्टे से अधिक समय तक पुलटिस रखने से घाव अच्छा होने में देरी लगती है। शरीर अत्यन्त गरम हो तो मिट्टी का ही नियमपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। गरम हो, तो गीले कपड़े की लपेट का प्रयोग करना चाहिए।

शवासन—बिस्तर पर सिर नीचे और पैर ऊपर करने के बाद शरीर को शिथिल कर देने से ही शवासन हो जाता है।

सलाद (salad)—कच्ची तरकारी के व्यंजन को सलाद कहते हैं। टमाटर, धनिए की पत्ती, पालक की शाक, अंकुरित मूँग और लेटुस आदि के बहुत छोटे टुकड़े कर उसमें नीबू का रस या शहद मिला लेने से ही सलाद बन जाता है। इसमें जैतून का भी कुछ तेल (आलिव आइल) मिलाना चाहिए। इसे खाने से पेट साफ होता है और फल खाने का-सा लाभ होता है। इससे पहले फल या टमाटर आदि का रस देना भी उचित है।

सहज छाती की लपेट—नाभि से छाती के ऊपर तक के सारे स्थान और पीठ को गीले कपड़े से ढकने के बाद अलवान आदि से

ढक देने से ही इस लपेट का प्रयोग हो जाता है। वास्तव में पेट की लपेट को ही ऊपर की ओर प्रयोग करने से ही इस लपेट का प्रयोग हो जाता है।

सूखी मालिश (dry friction)—स्वच्छ हाथों से घर्षण कर शरीर को लाल और गरम कर लेने का नाम ही सूखी मालिश है। स्नान के बाद या शरीर के ठण्डा हो जाने पर, इसका प्रयोग करना चाहिए। बच्चा यदि बहुत छोटा हो, तो जोर से उसकी मालिश कभी नहीं की जाए। जोर से मालिश करने से उसके कोमल शरीर का चमड़ा छिल सकता है।

हिप-बाथ (hip bath)—कटि-स्नान देखिए।

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक......620.........
दिनांक.............................

स्व० डा० कुलरञ्जन मुखर्जी प्रणीत

१।	अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा	४.५०
२।	दैर्नान्दर. रोगोंकी प्रा० चिकित्सा	४.५०
३।	पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा	४.५०
४।	स्त्री-रोगों की गृह-चिकित्सा	४.००
५।	शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा	३.००
६।	खाद्य की नयी विधि	४.००
७।	सत्य की खोज में	०.६२
८।	Protective Foods in Health and Diseases	8.00

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती प्रणीत

1.	A Hand Book of Natural Treatment	3.50
2.	Birth Control (Natural process)	0.50
३।	तम्बाकू का विष क्रिया	०.५०
4.	Sure Cure	4.00

प्राकृतिक चिकित्सालय,

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती

११४/२ बी० और सी, हाजरा रोड, कलकत्ता-२६

प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत्—सर्वदा प्रकृति को अनुसरण करना
(चरक)।

Nature manufactures all the medicines that man requires—मनुष्योंको जिन औषधियों की जरूरत होती है प्रकृति उन्हें अपने आप ही देह के अन्दर तैयार कर लेती है (Dr. L. N. Chowdhury, Retd. Civil Surgeon)।

Diet is health, diet is medicine—पथ्य ही स्वास्थ्य, पथ्य ही दवा है (Socrates)।

Medicine is a collection of uncertain prescriptions the result of which taken together collectively is more fatal than useful to mankind. Water, air and cleanliness are the chief articles in my pharmacopoea—कुछ अनिश्चित व्यवस्था की जो समष्टि उसी का नाम दवा है। सोचने पर यह मालूम होता है कि दवा से मानव समाज का जितना कल्याण होता है उससे ज्यादा होता है अकल्याण। जल, हवा तथा साफ-सुथरापन ही मेरी प्रधान दवा है (Napoleon Bonaparte)।

Disease is nothing more than an effort of Nature to restore health of the patient—हर रोग रोगी के शरीर में स्वास्थ्य वापस लाने की चेष्टा बिना और कुछ नहीं (Dr. Thomas Sydenham of England)।

Nature is the physician—प्रकृति ही चिकित्सक है (Hippo crates)।

What Nature cannot cure. nobody can cure—प्रकृति जिसे आरोग्य नहीं कर सकती, उसे कोई भी आरोग्य नहीं कर सकता (Sir William Osler)।